ISSN 2321-4945
UGC CARE LIST approved Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 14 ● अंक : 7 ● अक्टूबर : 2021

संपादक
डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

अतिथि संपादक
प्रो. मोहन

जागो मन के सजग पथिक ओ!

जागो मन के सजग पथिक ओ!
मेरे मन के आसमान में पंख पसारे
उड़ते रहते अथक पखेरू प्यारे-प्यारे!
मन की मरु मैदान तान से गूँज उठा
थकी पड़ी सोई-सूनी नदियाँ जागीं
तृण-तरू फिर लह-लह पल्लव दल झूम रहा
गुन-गुन स्वर में गाता आया अलि अनुरागी
यह कौन मीत अगनित अनुनय से
निस दिन किसका नाम उतारे!
हौले, हौले दखिन-पवन-नित
डोले-डोले द्वारे-द्वारे!
बकुल-शिरिष-कचनार आज हैं आकुल
माधुरी-मंजरी मंद-मधुर मुस्काई
क्रिश्नझड़ा की फुनगी पर अब रही सुलग
सेमन वन की ललकी-लहकी प्यासी आगी
जागो मन के सजग पथिक ओ!
अलस-थकन के हारे-मारे
कब से तुम्हें पुकार रहे हैं
गीत तुम्हारे इतने सारे!

-फणीश्वर नाथ 'रेणु'

एक हृदय हो भारत जननी

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

[केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित]

सलाहकार

श्री हरिकांत नाथ
प्रो. आर.एस. सर्राजु
प्रो. मोहन
डॉ. नारायण तालुकदार
डॉ. दिलीप कुमार मेधी
डॉ. अच्युत शर्मा
शंकर प्रसाद साहू

संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
(चलभाष : 9435340285)

अतिथि संपादक

प्रो. मोहन
(दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
(चलभाष : 9871115500)

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
(चलभाष : 9101541395)

शब्द संयोजन व अलंकरण

रतिकांत कलिता

एक प्रति	: बीस रुपये
अर्द्धवार्षिक	: सौ रुपये
वार्षिक शुल्क	: दो सौ रुपये

प्रकाशक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-781032

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण लेखक के हैं। संपादक या प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

लेखादि भेजने का पता :

संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
रूपनगर, गुवाहाटी-781032
E-mail: arps.guwahati@gmail.com

Postal Rgd. No. GH-127/2019-2021 ISSN 2321-4945
UGC CARE LIST approved Research Journal

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित
भाषा, साहित्य, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 14 **अंक : 7** **अक्टूबर, 2021**

विषय-सूची

: हिंदी विभाग :

- संपादकीय — 2
- श्री स्वामी श्रद्धानंदजी का शुद्धि आंदोलन में योगदान : एक ऐतिहासिक वर्णन — ✍ अर्चना/डॉ. आशा यादव — 3
- प्रकृति का अनुपम वरदान : मानस राष्ट्रीय उद्यान — ✍ डॉ. जिनाक्षी चुतीया — 9
- मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी अस्मिता की खोज — ✍ डॉ. अनुराधा कुमारी साहु — 13
- संत दादू और उनकी प्रासंगिकता — ✍ प्रो. जगमल सिंह — 19
- प्रवासी हिंदी कहानियों में प्रवासी जीवन के विविध आयाम — ✍ आनन्द कुमार राय — 24
- समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक चेतना — ✍ श्रावणी दास — 31
- रिश्तों के बंधन में स्वच्छंदता का स्वर 'सपनों की होम डिलीवरी' — ✍ श्रुति पाण्डेय — 38
- संगतकार — ✍ मंगलेश डबराल — 42
- आँसुओं की होली — ✍ प्रेमचंद — 43

असमीया विभाग

- বৰপেটা সত্ৰ — ✍ জ্ঞানৰঞ্জন দাস — 47
- অসমৰ মৃৎশিল্পৰ অতীত আৰু বৰ্তমান — ✍ ড°কৃষ্ণজ্যোতি সন্দিকৈ — 50

लेखक/लेखिकाओं से अनुरोध : · 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' के लिए भेजे जाने वाले लेखादि साहित्य, कला, संस्कृति विषयक होने चाहिए। ● भेजे गये लेखादि साफ अक्षरों में या टाइप कराकर ही भेजें। · अनूदित लेखों के लिए मूल लेख का उल्लेख करना अनिवार्य है। · सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

संपादकीय

गांधी दर्शन

गांधी दर्शन या गांधीवाद मूलत: तत्वान्वेषण है। दर्शन को कोई खगोल या भूगोल अपनी परिधि में बाँधकर नहीं रख सकता। जीवन व जगत की बौद्धिक और आत्मिक चिंतन-मनन ही दर्शन है। विज्ञान के इस उत्कर्ष युग में दर्शन की जो दुर्दशा हुई है, वह संपूर्ण मानव जाति के लिए चिंता का विषय है। गांधी के दर्शन केवल शाब्दिक नहीं, अपितु समग्रत: प्रायोगिक व व्यावहारिक था। इसलिए आज गांधी दर्शन देश-विदेश में अध्ययन एवं अध्यापन का विषय बन चुका है।

गांधी जी ने आजीवन मजदूर, गरीब, शोषितों, वंचितों के हित की ही बात की। उनके सपनों के भारत में रामराज्य की कल्पना है। जहां न कोई शोषित हो, न वंचित हो। वे प्रजातंत्र के पक्षधर थे। उनका प्रजातंत्र भारत से विस्तार पाकर समस्त विश्व को स्वयं में समाहित कर लेता है। यही कारण है कि गांधी के दर्शन उनके न चाहने पर भी एक नवीन वाद, जिसे गांधीवाद के नाम से अभिहित किया जाता है, का रूप धारण कर लेता है। गांधी जी द्वारा अक्सर प्रयुक्त होने वाला एक शब्द है - सर्वोदय। यह शब्द बड़ा ही व्यापक है। यह प्राचीन भारतीय संस्कृति, सुकरात की साहित्य साधना, बाइबिल से प्रकाशित रस्किन की अंत्योदय की अवधारणा का समन्वित रूप है। गांधी जी ने किसी पंथ या वाद से स्वयं को अलग करते हुए कहा था - 'गांधीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई पंथ या संप्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूँ।' इस कथन से गांधी जी ने मत-मतांतर से बचने के लिए विनम्रतापूर्वक बुद्ध के मौनालंबन की भांति एक नई परंपरा बनाई, लेकिन आज सर्वोदय एक समर्थ जीवन दर्शन ही नहीं बल्कि ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा आदि की संभावनाओं से परिपूर्ण समग्र दर्शन के रूप में उपस्थित है।

गांधी जी द्वारा अपनाया गया 'अहिंसा' शब्द की व्यापकता भी विश्वजनिन है। यह शब्द आज भी बहुचर्चित बना हुआ है, लेकिन करनी और कथनी में आकाश-पाताल का अंतर है। गांधी जी का मानना है कि जिस प्रकार हिंसा का जन्म मानव मस्तिष्क में होता है, उसी प्रकार अहिंसा का भी जन्म मानव-मस्तिष्क में ही होता है। इसलिए अहिंसा के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा तीनों प्रकार से युक्त होना चाहिए। वर्तमान समाज में यह शब्द अपना महत्व धीरे-धीरे खोता हुआ दिखाई देता है।

हमारे देश के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद मोदी जी ने स्वच्छता अभियान का जोर-शोर से प्रचार-प्रसार ही नहीं किया बल्कि स्वयं अपने हाथों में झाड़ू लेकर देशवासियों को स्वच्छता का संदेश भी दिया। उनके नेतृत्व में हर घर सुलभ शौचालय का निर्माण हो रहा है। इस अभियान के फलस्वरूप देशवासी साफ-सफाई पर विशेष रूप से ध्यान देने लगे हैं। यह देश के लिए निस्संदेह संतोष की बात है।

परंतु हम यह भी चिंतन करें कि स्वच्छता की बातें आज से लगभग सौ वर्ष पहले महात्मा गांधी ने की थीं। वे स्वच्छता के प्रति कटिबद्ध थे। जिसकी शुरुआत उन्होंने सर्वप्रथम अपने घर के शौचालय से की थी। इसमें दो बातें सामने निकलकर आती हैं। प्रथम, स्वच्छता के प्रति जागरुक होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। द्वितीय, यह कार्य किसी विशेष जाति वर्ग से न करवाकर अपना काम स्वयं करना है।

उनका जीवन एक व्यक्ति का जीवन नहीं था, उनमें जाति, वर्ण, भाषा, संप्रदाय, प्रदेश, देश, देशांतर की सारी विचारधाराएं समाहित हैं। संभवत: इसलिए उन्होंने कहा था - 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।' ❑

श्री स्वामी श्रद्धानंदजी का शुद्धि आंदोलन में योगदान : एक ऐतिहासिक वर्णन

✍ अर्चना
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
एम.एम. (पी.जी.) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

✍ डॉ. आशा यादव
एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
एम.एम. (पी.जी.) कॉलेज मोदीनगर
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश :

वैसे तो शुद्धि की व्याख्या बहुत ही विस्तृत है, यहाँ पर हमने शुद्ध की व्याख्या इस प्रकार की है, ''पतित मनुष्यों का उद्धार करना और आर्योत्तर (हिंदुओं से भिन्न) मनुष्यों को आर्य (हिंदू) जाति में सम्मिलित करना। इस कार्य को संपादित करने के लिए जो संस्कार किया जाता है, उसे शुद्धि संस्कार कहते हैं ।''

भारतीय समाज में अनेक विद्वानों ने समय-समय पर आंदोलनों के माध्यम से भारतीय समाज को सही मार्ग पर लाने का प्रयास किया है। उन्हीं विद्वानों में से एक थे-स्वामी श्रद्धानंदजी। इनके द्वारा शुद्धि आंदोलन के माध्यम से भारत में लाखों लोगों की शुद्धि कर उन्हें पुन: हिंदू जाति में सम्मिलित किया गया। इस आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि हिंदू जाति के जो लाखों लोग भटक कर मुसलमान या ईसाई बन गए थे, उन्हें पुन: सही मार्ग पर लाकर उनके धर्म या जाति में सम्मिलित कराया गया। इसलिए यहाँ स्वामी श्रद्धानंदजी द्वारा चलाए गए शुद्धि आंदोलन का अध्ययन करना तथा समाज तक इस ज्ञान को पहुँचाना उचित समझा गया है।

इस शोध-पत्र में स्वामी श्रद्धानंदजी द्वारा चलाए गए शुद्धि आंदोलन, शुद्धि आंदोलन के उद्देश्य, शुद्धि आंदोलन का प्रारंभ, भारतीय हिंदू सभा की स्थापना, शुद्धि सभा के उद्देश्य, शुद्धि सभा के कार्य, शुद्धिकरण की प्रक्रिया, शुद्धि आंदोलन की आवश्यकता, शुद्धि आंदोलन में किए गए कार्य तथा शुद्धि आंदोलन की सफलता एवं निष्कर्ष आदि का विवरण किया गया है ।

प्रस्तावना :

आधुनिक भारत में शुद्धि के सर्वप्रथम प्रचारक स्वामी दयानंदजी थे, लेकिन उसे आंदोलन के रूप में स्थापित कर संपूर्ण हिंदू समाज को संगठित करने वाले स्वामी श्रद्धानंद जी थे। ''सबसे पहले शुद्धि स्वामी दयानंदजी ने अपने देहरादून प्रवास के समय एक मुसलमान युवक की थी, जिसका नाम अलखधारी रखा गया था।''[1] ''महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने जन्म से होने वाले जात-पात के क्रम को शास्त्र और युक्ति दोनों के विरुद्ध माना है, उनका मत था कि जन्म से सब मनुष्य समान हैं। जन्म से ना कोई अछूत होता है और ना ही हीन, जैसा कर्म वह करेगा वैसा ही स्थान वह प्राप्त कर लेगा।''[2] यह था मनुष्य मात्र का समानता का दृष्टिकोण, जिससे प्रेरित होकर आर्य समाज ने अछूत कहलाने वाले भाइयों को यज्ञोपवीत देकर सवर्णों के समान अधिकार देने का काम शुरू किया था।

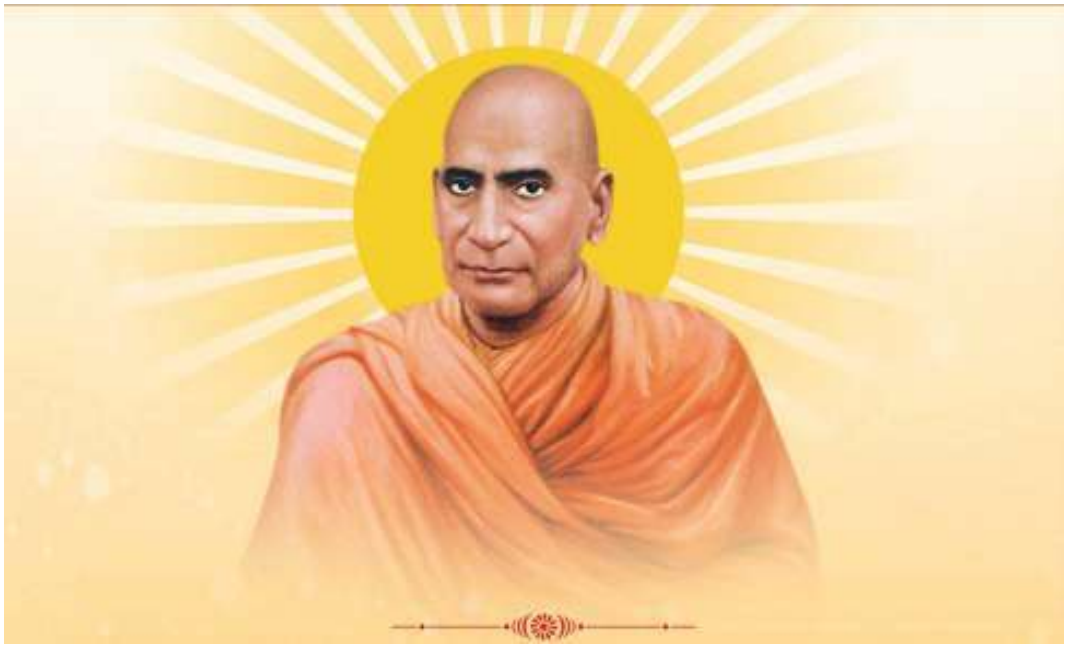

शुद्धि आंदोलन का उद्देश्य :

शुद्धि आंदोलन आर्य समाज तथा स्वामी श्रद्धानंदजी का एक दूरगामी तथा क्रांतिकारी आंदोलन था। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि बलपूर्वक या प्रलोभन द्वारा मुसलमान या ईसाई बनाए गए हिंदू, अगर पुन: हिंदू समाज में वापस लौटना चाहते हैं तो उनकी शुद्धि करके उन्हें पुन: हिंदू समाज व हिंदू धर्म में प्रवेश लिया जाए। इस प्रकार इस आंदोलन के द्वारा लाखों ईसाई और मुसलमान बन गए हिंदुओं को पुन: हिंदू धर्म में वापस आने का मौका दिया गया।[3]

शुद्धि आंदोलन की शुरुआत :

शुद्धि आंदोलन आर्य समाज द्वारा बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में उन लोगों को उनके धर्म में वापस लाने के लिए शुरू किया गया था, जिन्होंने खुद को इस्लाम या ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया था। देश में लाखों हिंदुओं को धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान एवं ईसाई बनाया जाता देखकर और इससे हिंदुओं की संख्या में उत्तरोत्तर कमी की कल्पना करके स्वामी श्रद्धानंदजी अत्यधिक चिंतित हो गए तथा उन्होंने इसे रोकने के लिए व्यापक आंदोलन चलाने का निश्चय किया ।

उनका मत था कि सर्वप्रथम जो लोग पुन: हिंदू धर्म में वापस आना चाहें, उन्हें शुद्ध करके आज भी हिंदू धर्म में वापस आने की अनुमति दी जानी चाहिए। ''आगरा में रहने वाले मलकाना राजपूत थे। इस जाति में जाट, गुर्जर, राजपूत आदि शामिल थे और इनसे औरंगजेब के समय में जबरन मुस्लिम धर्म स्वीकार करवाया गया था, वे अपने धर्म में वापस आना चाहते थे। उनकी आबादी लगभग 5 लाख की थी और वे आगरा, भरतपुर और मथुरा के जिलों में बसते थे। स्वामी श्रद्धानंदजी की प्रेरणा से हिंदू राजपूतों ने मलकानाओं को अपने धर्म में लेना स्वीकार किया और उन्हें सभी सामाजिक अधिकार देने को भी राजी हो गए। गांव के गांव का शुद्धिकरण किया गया। इन घटनाओं ने हिंदू पंडितों में जागृति पैदा कर दी और तत्पश्चात शुद्धि का दरवाजा सभी के लिए खोल दिया गया।''[4]

भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की स्थापना :

मुसलमानों तथा ईसाइयों द्वारा धर्म पर किए गए आक्रमण को रोकने तथा उस समय उपस्थित विकट समस्या को हल करने के लिए आगरा के कुछ आर्य सज्जनों ने परामर्श करके विभिन्न प्रांतों में प्रत्येक हिंदू

संप्रदाय के प्रतिष्ठित विद्वान महानुभावों को आगरा में आमंत्रित किया। फलस्वरूप बाहर से विविध संप्रदायों के 85 विद्वान सज्जन आगरा में पधारे। तत्पश्चात 13 फरवरी, 1923 को स्वामी श्रद्धानंदजी की अध्यक्षता में एक सभा की स्थापना की गई तथा इसका नाम हिंदू शुद्धि सभा रखा गया। इस सभा के सभापति श्री स्वामी श्रद्धानंदजी महाराज सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए।[5]

भारतीय हिंदू शुद्धि सभा के उद्देश्य :

इस सभा में आर्य सनातन धर्मी, जैन, सिख और पारसी आदि आर्य जाति के प्रत्येक संप्रदाय के सज्जन शामिल किए गए, जिन्होंने शुद्धि का कार्य प्रारंभ करने के लिए सभा के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार निर्धारित किए :-

1. हिंदू समाज के पिछड़े हुए भाइयों को पुन: हिंदू समाज में शामिल करना । 2. प्रेम तथा धर्म का प्रचार करना । 3. पाठशालाओं तथा अन्य शिक्षाप्रद संस्थाओं द्वारा विद्यादि का प्रचार करना । 4. अनाथ तथा विधवाओं के धर्म की रक्षा करना । 5. आवश्यकतानुसार चिकित्सालय खोलना । 6. (शुद्धि विषयक) धार्मिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा अन्य पुस्तकों को छपवाना एवं वितरित करना।[6]

भारतीय हिंदू शुद्धि सभा के कार्य :

भारतीय हिंदू सभा ने अपने जन्मदिन 13 फरवरी, 1923 से दिसंबर, 1926 तक मत विरोधियों के प्रबल विरोध और कुटिल आक्रमणों का सामना करते हुए भी 564 ग्रामों के मलकानाओं (नव मुस्लिमों) को शुद्ध करके आर्य जाति में सम्मिलित किया ।

इसके अतिरिक्त शिक्षा के लिए स्कूल, स्वास्थ्य रक्षार्थ वैद्य-डॉक्टर, धर्म प्रचारार्थ उपदेशक और कथावाचक नियुक्त किए गए। शुद्धि सभा विधवाओं और अनाथ बच्चों की रक्षा का कार्य भी तेजी से कर रही है और प्रति वर्ष हजारों स्त्री-बच्चों को मुसलमानों के पंजों से छुड़ाकर उनका उचित प्रबंध करती आ रही है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में सभा की 35 से ज्यादा शाखाएँ हैं। सभा के पास 80 वैतनिक प्रचारक और 85 अवैतनिक प्रचारक थे।[7]

"मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आजकल नैतिक आचरण का सर्वत्र पतन हो रहा है। कांग्रेस, हिंदू महासभा तथा खिलाफत जैसे आंदोलनों का नेतृत्व करने के लिए तो अनेक लोग पहले से ही विद्यमान हैं, किंतु मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए यही उचित है कि मैं आर्य जाति के समक्ष ब्रह्मचर्य को पुनर्जीवित करने तथा दलित जातियों के उत्थान के लिए कुछ ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत करूँ।

शुद्धि सभा का आय-व्यय :

भारतीय हिंदू शुद्धि सभा की 13 फरवरी, 1923 से दिसंबर, 1926 तक कुल 2,32,272 (दो लाख, बत्तीस हजार, दो सौ बहत्तर) रुपए की आय हुई है और व्यय 2,09,629 (दो लाख, नौ हजार, छह सौ उनतीस) रुपए हुए । अत: प्रत्येक हिंदू को इसकी तन, मन, धन से सहायता करनी चाहिए।[8]

शुद्धिकरण की प्रक्रिया :

स्वामी दयानंदजी ने वर्ग विभाजन का विरोध किया तथा पथभ्रष्ट लोगों को सही पथ का निर्देश दिया । सर्वप्रथम देहरादून के मुंशी मोहम्मद उमर को पुन: उसके धर्म में परिवर्तित करके अलखधारी नाम दिया गया। इसके बाद उन सैकड़ों हिंदुओं को, जो कि लालच आदि के द्वारा सार्वजनिक वैदिक अक्षय वृक्ष की छाया से दूर हटा दिए गए, उनको पुन: आर्य धर्म में सम्मिलित कर लिया गया।[9] जब स्वामी दयानंदजी ब्रह्मधाम को प्रस्थान कर गए, तब आर्य समाज में स्वामी श्रद्धानंदजी ने इस कार्य को पूरा किया ।

जब ईसाई मिशन के द्वारा हिंदुओं द्वारा पीड़ित अछूत वर्ग के लोगों का धर्म परिवर्तित करने का सोचा गया तो यह एक सरल और सीधा-साधा कार्य था । एक बार रामचरण चमार के छोटे बेटे के माथे पर पानी से क्रॉस के चिन्ह बनाए गए तथा उसका नाम पीटर जॉन पाल रख

दिया गया। उसे उसी कालीन पर बैठने का अधिकार प्राप्त हो गया, उसे कुएँ से पानी खींचने का अधिकार प्राप्ता हो गया, जिनका प्रयोग सवर्ण हिंदू करते थे और तो और वह ब्राह्मणों से हाथ भी मिलाने लगा। चमार, डोम और पारसी हजारों की संख्या में ईसाइयत को अपनाने लगे, तब इस समस्या की ओर स्वामी श्रद्धानंदजी का ध्यान आकृष्ट हुआ और स्वामीजी ने इन पथभ्रष्ट लोगों को इनके मूल घर में लाना शुरू किया ।

शुद्धि आंदोलन की आवश्यकता :

इस विचित्र संसार में कई बार ऐसे महापुरुष दिखाई देते हैं, जो बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न होते हैं। उन्हीं महापुरुषों में स्वामी श्रद्धानंदजी का नाम भी अग्रगण्य है। स्वामी श्रद्धानंदजी ने शुद्धि आंदोलन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''शुद्धि आंदोलन हिंदुओं के रक्षार्थ उठाया गया सबसे महत्वपूर्ण कदम है।'' भारतवर्ष में हिंदुओं की घटती हुई संख्या को देखकर स्वामी श्रद्धानंदजी को इस आंदोलन की परम आवश्यकता महसूस हुई और उन्होंने ही इस आंदोलन का नेतृत्व किया। स्वामीजी ने अछूतोद्धार का बीड़ा उठा रखा था। जो अछूत हिंदू से मुसलमान बन गए थे या हिंदू से ईसाई बन गए थे, स्वामी श्रद्धानंदजी ने उन्हें पुन: हिंदू समाज में दीक्षित करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। इसी को स्वामीजी ने शुद्धि आंदोलन का नाम दिया।

स्वामी श्रद्धानंदजी ने उस समय की स्थिति देखकर चिंतन-मनन के परिणामस्वरूप एक स्थान पर लिखा है, ''मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आजकल नैतिक आचरण का सर्वत्र पतन हो रहा है। कांग्रेस, हिंदू महासभा तथा खिलाफत जैसे आंदोलनों का नेतृत्व करने के लिए तो अनेक लोग पहले से ही विद्यमान हैं, किंतु मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए यही उचित है कि मैं आर्य जाति के समक्ष ब्रह्मचर्य को पुनर्जीवित करने तथा दलित जातियों के उत्थान के लिए कुछ ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत करूँ।''[10]

स्वामीजी का मानना था कि हिंदू समाज को संगठित बनाने के लिए अछूत समस्या का निराकरण किया जाना नितांत आवश्यक है। इसका कारण यह है कि देश का बहुसंख्यक वर्ग यदि सामाजिक दृष्टि से दुर्बल रहा तो प्राप्त स्वाधीनता की रक्षा कर पाना भी उसके लिए संभव नहीं होगा ।

शुद्धि आंदोलन की आवश्यकता सिर्फ इसलिए ही नहीं थी कि हिंदुओं की संख्या निरंतर घटती जा रही थी, बल्कि इसका एक और कारण यह भी था कि हिंदुओं में प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर एक बट्टा है और उनके इस पाप का दुष्परिणाम संपूर्ण भारतीय राष्ट्र भुगत रहा है। जब कभी हमारे राजनीतिक नेता स्वराज की माँग पेश करते हैं तो उनके सामने उनके पापों को रखकर उनका मुँह बंद कर दिया जाता है।[11] स्वामी श्रद्धानंदजी लिखते हैं कि कई सुधारकों ने हिंदुओं के इस पाप के प्रति आवाज उठाई, परंतु उनकी आवाज बहरे कानों में पड़ी और दबकर रह गई ।

शुद्धि आंदोलन के दौरान कार्य :

धर्म एवं हतो हंति धर्मो रक्षति रक्षित:
तस्माद्धमो न हंतवयो मा नो धर्मो हतोअवधीत

अर्थात् नष्ट हुआ धर्म व्यक्ति को मारता है तथा रक्षा किया गया धर्म ही उसकी रक्षा करता है। इसलिए नष्ट हुआ धर्म कहीं उसे न मार डाले यह सोचकर ही कभी भी धर्म का हनन नहीं करना चाहिए। [12]

सबसे पहले रहतियों की सामूहिक शुद्धि की गई। यह सिखों का एक वर्ग था, परंतु खालसा लोग भी इन्हें अपने साथ दरी पर बैठने का अधिकार नहीं देते थे। सन् 1896 के मध्य में इस वर्ग के लोगों ने अपनी शुद्धि के लिए प्रार्थना की और अगले कुछ ही महीनों में 1000 से भी अधिक व्यक्ति आर्य समाज में भाइयों के रूप में प्रविष्ट कर लिए गए। इन लोगों को पूर्ण सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्रदान किए गए ।

सन् 1902 में सियालकोट (पंजाब) में मेघों के उद्धार का प्रश्न अपने हाथों में लिया। इन मेघों को भी अछूत समझा जाता था। इसके पश्चात मुजफ्फरगढ़ और मुल्तान जिले के ओड, पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के डोम हजारों की संख्या में शुद्ध किए गए एवं मेघों के उद्धार के लिए जम्मू और कश्मीर रियासत में तथा अन्यत्र आंदोलन किया गया। परिणामत: 40 हजार से भी अधिक

आर्य समाज में प्रविष्ट हो गए।

दिल्ली तथा उसके आस-पास आर्य समाज उन सैकड़ों अछूतों को पुन: हिंदू धर्म में ले आया, जो केवल नाम मात्र के ईसाई थे । हजारों धानकों, चमारों, रहगड़ों तथा भंगियों तक को ईसाइयों के होने वाले आक्रमणों से बचा लिया गया । ईसाई मिशनरियों ने तो निराश होकर यह धर्म परिवर्तन का कार्य ही छोड़ दिया होता यदि उन्हें अप्रत्याशित रूप से सहायता न मिल गई होती। हिंदू महासभा के आदेश के अनुसार प्रत्येक ईसाई, मुसलमान और यहूदी बिना किसी बाधा के हिंदुत्व में दीक्षित हो सकता है।

एक समय था, जब भारतवर्ष में हिंदू सभ्यता अपने चरम पर थी और 99 प्रतिशत हिंदू थे, लेकिन कुछ वर्षों बाद मुगलों और अँग्रेजों के शासनकाल में ऐसा समय भी आया, जब हिंदू संस्कृति का ह्रास होना आरंभ हो गया और धर्म परिवर्तन के कारण हिंदुओं की संख्या उत्तरोत्तर घटने लगी। स्वामी श्रद्धानंदजी से यह स्थिति देखी नहीं गई और उन्होंने हिंदू जाति के पुनरुद्धार का बीड़ा उठा लिया तथा शुद्धि आंदोलन का सूत्र ग्रहण किया। इसी का सुपरिणाम था कि हिंदू जाति में पुन: जागृति की लहर दौड़ गई, नवजीवन का संचार हुआ और शुद्धि आंदोलन का शुभारंभ हुआ। इस आंदोलन के सूत्रधार स्वामीजी थे।

कुछ लोग किसी लोभ, लालच या भय के कारण हिंदू से मुसलमान बन गए थे, लेकिन वह पूर्णतया: मुसलमान नहीं बन पाए थे, क्योंकि उन्होंने हिंदू परंपराओं का पूर्णतया: कभी त्याग ही नहीं किया था। स्वामी श्रद्धानंदजी ने इस स्थिति पर विचार किया और यतन किया कि ऐसे लोगों का हिंदू धर्म में परावर्तन करना सहज संभव होगा ।

पंजाब, संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में मलकाने राजपूतों की एक श्रृंखला थी। वह मुसलमान तो बन गए थे, किंतु स्वयं को अभी भी चौहान, गहलोत, राठौर आदि ही लिखते थे और आज भी लिखते हैं । स्वामीजी ने अथक प्रयत्न करके क्षत्रिय उपकारिणी सभा के माध्यम से इन मलकाने राजपूतों का धर्म परिवर्तन कराया था। मुसलमानों में इन गतिविधियों की तीव्र प्रतिक्रिया होने लगी। फलस्वरूप 18 मार्च, 1913 को जमीयत-उल-उलेमा-ए हिंद ने मुंबई में एक बैठक का आयोजन कर उसमें इस विषय पर चिंता प्रकट करके स्वामी श्रद्धानंदजी के कार्य की निंदा का प्रस्ताव पारित किया। जमीयत के इस निंदनीय कृत्य के बाद से ही स्वामीजी के प्रति मुसलमानों के भीतर द्वेष भावना भड़कने लगी। स्थिति को ध्यान में रखते हुए आर्य समाज ने चाहा कि स्वामीजी अपने साथ एक- दो अंगरक्षक रखें, किंतु स्वामी जी ने इसे स्वीकार नहीं किया ।

उत्तर भारत के अलावा दक्षिण भारत में यह समस्या और भी जटिल थी। दक्षिण में मद्रास के गोखले हॉल में जो मर्मस्पर्शी भाषण दिया था। उस भाषण में आपने कहा था- ''यदि आपने अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयों के उद्धार की ओर विशेष ध्यान न दिया, तो मैं आपको सचेत करता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब आपके वह दलित भाई, जिन्हें आप पंचम कहते हो, आपसे सब तरह का संबंध तोड़ देंगे या तो वह सबके सब दूसरे संप्रदायों में चले जाएँगे अथवा अपनी जाति ही अलग बना लेंगे। मैं स्वयं कमजोर, रोगी और वृद्ध होते हुए भी पूरे देश में घूम जाऊँगा तथा दलित भाइयों का संगठन करूँगा और उनको कहूँगा कि वह हर एक ब्राह्मण अथवा अब्राह्मण को स्पर्श करके वैसा ही भ्रष्ट कर दे, जैसा वह आप को मानते हैं । तब निश्चय ही आप सब उनके पैरों में माथा टेक देंगे।''[13] वहाँ के भाषण का, वहां उपस्थित जनता, विशेषकर ईसाई हुए दलित भाइयों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे स्वामीजी को अपना रक्षक मानने लगे। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन हजारों ने फिर स्वामीजी से दीक्षा लेकर हिंदू धर्म में प्रवेश किया।

शुद्धि आंदोलन में सफलता :

स्वामी श्रद्धानंदजी को अपने शुद्धि आंदोलन में अपार सफलता प्राप्त हुई । इसकी पुष्टि लाला लाजपत रायजी द्वारा कही गई इस बात से हो सकती है । लाला लाजपत राय ने शुद्धि आंदोलन के बारे में लिखा है कि ''स्वामी दयानंद की दूरदृष्टि और स्वामी श्रद्धानंद के उत्साह के चलते अब हिंदू धर्म एक पूरी तौर पर धर्म प्रचार करने वाला धर्म बना है। अब आंदोलन का शोरगुल का काल समाप्त हो गया और धर्म परिवर्तन या गैर-हिंदुओं की पुनर्वापसी हिंदू जीवन का आम रवैया बन गया है। मुझे लगता है कि आर्य समाज में स्वामी श्रद्धानंदजी की यही सबसे बड़ी उपलब्धि है और वैदिक धर्म तथा हिंदू धर्म की यह महानतम सेवा है।''[14]

निष्कर्ष :

इस शोध अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि एक समय था, जब भारतवर्ष में हिंदू सभ्यता अपने चरम पर थी और 99 प्रतिशत हिंदू थे, लेकिन कुछ वर्षों बाद मुगलों और अँग्रेजों के शासनकाल में ऐसा समय भी आया, जब हिंदू संस्कृति का ह्रास होना आरंभ हो गया और धर्म परिवर्तन के कारण हिंदुओं की संख्या उत्तरोत्तर घटने लगी। स्वामी श्रद्धानंदजी से यह स्थिति देखी नहीं गई और उन्होंने हिंदू जाति के पुनरुद्धार का बीड़ा उठा लिया तथा शुद्धि आंदोलन का सूत्र ग्रहण किया। इसी का सुपरिणाम था कि हिंदू जाति में पुनः जागृति की लहर दौड़ गई, नवजीवन का संचार हुआ और शुद्धि आंदोलन का शुभारंभ हुआ। इस आंदोलन के सूत्रधार स्वामीजी थे।

हिंदुओं के सामूहिक रूप से धर्म परिवर्तन के लिए अत्यधिक उत्साही होते हुए भी मुसलमानों को अपना यह काम छोड़ देना पड़ा और उनका यह कार्य भाग्य के सहारे और अति सूक्ष्म ढंग से होने लगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वामीजी ने स्नेह और नम्रतापूर्वक जो दिशा बताई है, यदि उसका श्रद्धा और विश्वास के साथ अनुगमन किया जाए तो समझा जा सकता है कि सभी सुधार धीमे-धीमे हो जाएँगे और मानव समाज के कल्याण के लिए एक बार फिर प्राचीन आर्यों की संतानें सामने आकर खड़ी हो जाएँगी । ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 109
2. इंद्र विद्यावाचस्पति : आर्य समाज का इतिहास, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली (1957) पृष्ठ संख्या 249
3. डॉ. ए.के. चतुर्वेदी : इतिहास, राजीव बंसल एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशंस, आगरा, पृष्ठ संख्या 175
4. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 159
5. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 253
6. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 254
7. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 255
8. बाबू मथुरा प्रसाद शिवहरे : शुद्धि चंद्रोदय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृष्ठ संख्या 256
9. डॉ. विनोद चंद्र विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानंद एक विलक्षण व्यक्तित्व, आर्य धर्मार्थ न्यास (2008), पृष्ठ संख्या 52
10. अशोक कौशिक : स्वामी श्रद्धानंद, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली (2012), पृष्ठ संख्या 82
11. डॉ. विनोदचंद्र विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानंद एक विलक्षण व्यक्तित्व, आर्य धर्मार्थ न्यास (2008), पृष्ठ संख्या 519
12. प्रोफेसर स्वतंत्र कुमार : गुरुकुल शोध प्रभा अंक-1, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार पृष्ठ संख्या 3
13. पं. सत्यदेव विद्यालंकार : स्वामी श्रद्धानंद, स्वामी श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशन केंद्र, हरिद्वार, (2003) पृष्ठ संख्या 3
14. शमसुल इस्लाम : भारत में अलगाववाद और धर्म, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली (2006), पृष्ठ संख्या 103

आलेख

प्रकृति का अनुपम वरदान : मानस राष्ट्रीय उद्यान

✍ डॉ. जिनाक्षी चुतीया

भूमिका :

विश्वभर में प्रसिद्ध काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान के बारे में तो सभी जानते हैं। जितने भी पर्यटक असम घूमने आते हैं वे दो जगह अवश्य जाना चाहते हैं- गुवाहाटी के नीलाचल पहाड़ पर स्थित माँ कामाख्या मंदिर और एक सींग वाले गैंडे के लिए प्रसिद्ध काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान। पर काजीरंगा के अलावा भी असम में कई ऐसे वन हैं, जिनकी खूबसूरती और खूबी काजीरंगा से कम नहीं है। ऐसे ही एक अभयारण्य का नाम है मानस या मानाह राष्ट्रीय उद्यान।

अध्ययन का उद्देश्य :

मानस राष्ट्रीय उद्यान एक विशाल संरक्षित अरण्य है, जो एक वृहत संख्या के जीव-जंतु, वृक्ष और तृण के प्रजातियों का घर है। यह एक विश्व धरोहर स्थल भी है। यह एक ऐसा अभयारण्य है, जो लगभग विनाश के संकटकालीन समय को पार करके फिर से जीव-जंतुओं का निर्भय आवास स्थल बन गया है। मानस राष्ट्रीय उद्यान का इतिहास, संकटकाल, जीवकुल का परिचय, संरक्षण नीति और पर्यटकों का आकर्षण केंद्र के रूप में इसके महत्व को दर्शाना ही इस अध्ययन का उद्देश्य है।

अध्ययन का महत्व :

इस अध्ययन से पाठक मानस राष्ट्रीय उद्यान के इतिहास और जैव-विविधता के बारे में जान पाएँगे और इस अभयारण्य की विभिन्न पहलुओं पर आगे शोध कार्य करने के लिए उत्सुक होंगे।

अध्ययन की कार्य प्रणाली :

इस अध्ययन में वर्णनात्मक कार्य प्रणाली को अपनाया गया है। विषय-वस्तु पर लिखित साधन कम होने के कारण विभिन्न वेबसाइटों का सहारा लिया गया है। मानस राष्ट्रीय उद्यान भ्रमण करने के व्यक्तिगत अनुभव को भी एक स्रोत की तरह व्यवहार किया गया है।

मानस राष्ट्रीय उद्यान का परिचय एवं इतिहास :

मानस राष्ट्रीय उद्यान असम के उत्तर पश्चिम हिस्से में वर्तमान बाक्सा जिले में अवस्थित है। यह अभयारण्य उत्तर दिशा में भूटान, हिमालय से मिलता है और भूटान के रॉयल मानस वाइल्डलाइफ सैंगक्चूएरी से मिला हुआ है। शुरुआत में मानस राजकीय शिकार भूमि के रूप में संरक्षित था। तब इसका नाम था नॉर्थ कामरूप रिजर्व फॉरेस्ट। सन् 1973 में जब भारत सरकार का प्रोजेक्ट टाइगर शुरू हुआ, यह पहले अरण्यों में से है, जिसे टाइगर रिजर्व घोषित किया गया। सन् 1985 में UNESCO द्वारा इसे प्राकृतिक विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया। सन् 1989 में UNESCO के मानव और जीवमंडल कार्यक्रम के तहत इसे जीवमंडल रिजर्व के रूप में घोषित किया गया। सन् 1990 में मानस वन को राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया। इसका क्षेत्रफल लगभग 500 वर्ग किलोमीटर है। यह उद्यान चिरांग रिफु एलफन्ट रिजर्व का आंतरिक क्षेत्र भी है। इस उद्यान में 22 ऐसे लुप्तप्राय: प्रजाति के जीव पाए जाते हैं, जो वन्यप्राणी सुरक्षा कानून की अनुसूची 1 में नामित हैं। UNESCO के उद्धरण से, यह

उद्यान उत्कृष्ट प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र और असाधारण प्राकृतिक सौंदर्य के लिए महत्वपूर्ण है। यहाँ घास के मैदान, पतझड़ी वन, सदाबहार वन, पहाड़, नदी और झरने का अद्भुत संगम देखने को मिलता है।

इस अरण्यभूमि में बोड़ो और आदिवासी जनजाति के लोग वास करते थे और वनज संपदा का उपयोग भी यही लोग करते थे। इसके सीमावर्ती करीब 57 गाँव हैं, जिसमें ज्यादातर बोड़ो जनजाति के लोगों का निवास है। इन वनों को ये जनजातीय लोग अपने पालतू जानवरों को चराने और घरेलू लकड़ी के लिए इस्तेमाल करते थे। पर जब से वन संरक्षण शुरू हुआ, इन जनजातीय लोगों का हक छिन गया और लोगों में पिछड़ेपन की भावना जागरूक होने लगी और स्थानीय जनजाति के लोग और वन विभाग में तकरार होने लगा। वंचना और उपेक्षा की इसी भावना ने विद्रोह को जन्म दिया और सन् 1988 से 2003 तक मानस राष्ट्रीय उद्यान को बहुत हानि पहुँचा। पर सन् 2003 में भारत सरकार, असम सरकार और विद्रोही संगठन के बीच शांति समझौता हस्ताक्षरित हुआ और बोडोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल का गठन हुआ। इसी साल बोड़ो उग्रवादियों ने अपने हथियार डाल दिए और बोडोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल को स्वायत्त शासन का अधिकार मिल गया। स्थानीय जनजातीय अधिवासी अब उद्यान को अपना समझकर उसके पुनर्निर्माण में जुट गए। जनजातीय लोगों की मदद से अवैध शिकार, पेड़ की कटाई पर काबू पाया गया और पर्यटन क्षेत्र में भी सुधार आया। अब जनजातीय लोग इस उद्यान के प्रबंधन और संरक्षण का हिस्सा हैं। इन्हें पर्यटन के जरिए आजीविका मिली और उद्यान प्रशासकों को स्थानीय फौज मिली, जो उद्यान सुरक्षा में भागीदार बने। अब मानस राष्ट्रीय उद्यान एकदम सुरक्षित वन है, जहाँ एक तरफ जीव-जंतु और पेड़-पौधे तो सुरक्षित हैं ही, साथ ही पर्यटक, प्रकृतिप्रेमी और यहाँ नियुक्त वन विभाग के कर्मचारी भी सुरक्षित हैं।

मानस नाम की उत्पत्ति सर्प की देवी मनसा से हुआ है। मानस राष्ट्रीय उद्यान के पश्चिम सीमा में मानस नदी बहती है और यहाँ यह दो हिस्सों में बँटकर बेकी और भोलकाडोबा नामक दो नदी बनकर लगभग 64 किलोमीटर बहने के बाद ब्रह्मपुत्र नद से मिलती हैं। उद्यान के बीच और पाँच छोटी नदियाँ बहती हैं। बरसात के मौसम में उद्यान के पश्चिमी हिस्सा में बाढ़ आती है, पर इससे जानवरों को कोई खास नुकसान नहीं होता है, क्योंकि ये जाकर ऊँची जगह पर शरण ले लेते हैं। गर्मियों में यहाँ का सर्वोच्च तापमान 37 डिग्री सेल्सियस होता है और ठंड में निम्नतम तापमान 5 डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है।

मानस राष्ट्रीय उद्यान की जैव-विविधता :

मानस राष्ट्रीय उद्यान में लगभग 60 स्तन्यपायी जीव, 42 सरीसृप, 7 उभचर और 500 के आसपास चिड़ियों की प्रजाति पाई जाती हैं। इनमें से करीब 26 प्रजाति विश्व में खतरे की सूची में हैं। इसी तरह पेड़-पौधों में भी यह उद्यान अति विविधता से भरपूर है। यहाँ 89 पेड़ की प्रजातियाँ, 49 झाड़ियाँ, 37 नीची झाड़ियाँ, 172 जड़ी-बूटी, 36 तरह की लताएँ, 15 तरह के ऑर्किड 18 तरह के फर्न और 43 प्रजाति के घास पाए जाते हैं। जानवरों में गैंडा, हाथी, बाघ, जंगली सूअर, खरगोश, गोल्डन लंगूर, मकाक बंदर, तेंदुआ, सुनहरी बिल्ली, धूमिल तेंदुआ, सिविट बिल्ली, नेवला, हिमालयन काला भालू, गौर, बारहसिंगा, सांभर हिरण, पिगमी हॉग, जल भैंस आदि प्रधान हैं। चिड़ियों में बंगाल फ्लोरिकन, गिद्ध, बगुला, सारस, ईगल, हॉर्नबील आदि प्रधान हैं। इनमें कई गंभीर रूप से लुप्तप्राय: प्रजाति भी हैं। मोर बड़ी तादाद में पाए जाते हैं। इसके अलावा यहाँ करीब 200 प्रजाति की तितलियाँ पाई जाती हैं। 79 तरह की मछलियाँ और कई प्रजाति के कछुए भी यहाँ रिकॉर्ड किए गई हैं। सरीसृपों में गंगेटिक घरीयल, कॉमन मानिटर लिजर्ड, रॉक पाइथान, किंग कोबरा, आदि प्रधान हैं।

मानस राष्ट्रीय उद्यान के लिए यातायात के साधन:

मानस राष्ट्रीय उद्यान गुवाहाटी के लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा से 145 किलोमीटर दूर स्थित है और यह दूरी करीब तीन घंटे में तय की जा सकती है। बरपेटा रोड रेलवे स्टेशन से करीबन 22 किलोमीटर दूर स्थित है, जहाँ भारत के मुख्य शहर से चलने वाली ज्यादातर रेलगाड़ियों के स्टॉपेज है। न्यू

बंगाईगांव रेल्वे स्टेशन से लगभग 70 किलोमीटर दूर स्थित है, जहाँ राजधानी एक्स्प्रेस का ठहराव है और यह दूरी डेढ़ घंटे में तय होती है। सड़क यातायात भी काफी अच्छा है और आसपास के सभी शहरों से यह राष्ट्रीय उद्यान सड़क से जुड़ा हुई है।

ठहरने और विनोदन के साधन :

मानस राष्ट्रीय उद्यान प्रकृति की गोद में ऐसे परिवेश में स्थित है, जहाँ आकर इंसान नागरिक जीवन की भाग-दौड़ को भूलकर एक अनोखी शांति में कुछ दिन व्यतीत कर सकता है। बांसबारी में स्थित पर्यटक निवास और तमाम अन्य रिजॉर्ट में रहना अपने आप में अनूठी अनुभूति है। सिर्फ वन्य जीव प्रेमी ही नहीं, कोई भी व्यक्ति यहाँ आकर प्रकृति का आनंद ले सकता है, क्योंकि अवसर विनोदन के लिए यह स्थान अति उत्तम है।

पर्यटकों के रहने के लिए मानस राष्ट्रीयय उद्यान की सीमा पर कई अच्छे और आधुनिक सुविधायुक्त लॉज, रिजॉर्ट और होम-स्टे हैं। वन विभाग का गेस्ट हाउस भी है। यहाँ कोई बड़ी और ऊँची इमारत वाले होटल नहीं हैं। बल्कि बड़े इलाके में फैले हुए प्यारे प्यारे कुटीर (कॉटिज) हैं, जो प्रकृति की गोद में फूलों के बगीचे के बीचोंबीच बनाए गए हैं। तंबू की व्यवस्था भी होती है और पर्यटक की रुचि के अनुसार खाने-पीने की व्यवस्था है। दिन में अरण्य दर्शन से थके हुए आकर शाम को लॉज में आग सेंककर गुफ्तगू कर सकते हैं और साथ ही स्थानीय लोकनृत्य का आनंद भी ले सकते हैं। आप मैनेजर से कहेंगे तो वो स्थानीय खान-पान का भी बंदोबस्त कर देगा। यहाँ के रिजॉर्ट और लॉज में स्थानीय युवक और युवतियाँ परिचारक के रूप में काम करते हैं और ये बड़ा मन लगाकर अतिथि सत्कार करते हैं। ये बड़े सीधे-साधे होते हैं और अपने अतिथि की हरसंभव सहायता करने की कोशिश करते हैं। बांसबारी में मानस राष्ट्रीय उद्यान की सीमा पर ही एक चाय बागान है। फातिमा टी एस्टेट नामक यह चाय बागान काफी बड़ा और सुंदर है और मानस की खूबशूरती में सोने पे सुहागा जैसा है। पर्यटक यहाँ फैक्ट्री में बनी ताजी चाय का आनंद ले सकते हैं। मानस नदी में राफ्टिंग की सुविधा भी है।

बांसबारी वह जगह है, जहाँ सभी रिजॉर्ट और लॉज अवस्थित हैं और यहाँ वन विभाग का कार्यालय भी है। यहाँ वन विभाग के कार्यालय से अनुमतिपत्र लेकर मानस जंगल में 'सफारी' शुरू किया जाता है। 'सफारी' हाथी या जीप से कर सकते हैं। पर मानस काफी बड़ा जंगल है, इसलिए जीप में सफारी करना ज्यादा उचित लगता है। जीप हो या हाथी, साथ में एक वन सुरक्षाकर्मी बंदूक के साथ जरूर रहेगा। बिना सुरक्षा कर्मी के जंगल के अंदर जाना मना है। इसका कारण यह है की कभी भी जंगली जानवर आपके जीप के सामने आ सकता है- वह हाथी, गैंडा, भैंस भी हो सकता है। उसे भगाने के लिए हवा में गोली चलानी पड़ सकती है। जब भी ऐसा मौका आता है, वह डरावना तो होता है, पर पर्यटक के लिए काफी रोमांचकारी भी होता है। जंगल के अंदर जाते ही आपको बहुत सारे मोर और हिरण दिखाई देंगे। आप दोनों तरफ ध्यान से देखते जाएँगे तो दूर खड़ा गैंडा भी दिखाई देगा। हाथी, भैंस, भारतीय बाइसन आपको झुंड में दिखाई देंगे। रास्ते में ही ऊँचे पेड़ पर ढेर सारे लंगूर भी दिखाई देंगे। अचानक से आपको जंगली सूअर भी दिख जाएगा, जो आपको देखते ही तेजी से दौड़ता हुआ भाग जाएगा। जंगली मुर्गी भी आपको बहुत मिलेगी। पर जिसके लिए मानस प्रसिद्ध है, बंगाल टाइगर नसीब वाले को ही देखने को मिलता है, क्योंकि बाघ इंसान से हमेशा दूर रहता है। पगडंडी से थोड़ी बड़ी कच्ची सड़क पर जीप धीरे-धीरे बिना हॉर्न बजाए आगे बढ़ती है। आपको लगेगा की जीप का चालक सिर्फ सामने देखकर गाड़ी चला रहा है। पर नहीं, उसकी आँख और कान चारों तरफ हैं। बीच-बीच में अचानक वह जीप रोक देगा। इसका मतलब पास ही कहीं कोई जानवर या चिड़िया है। आप नजारा देखकर आनंद लीजिए या अपने कैमरे से तस्वीर कैद कीजिए। जंगल के बीच सुरक्षा कर्मियों के कई कैम्प हैं। घर से दूर रह रहे सुरक्षा कर्मी कैम्प को ही घर जैसा सजा लेते हैं। ये लोग अपने छोटे से आँगन में तरफ-तरह के फूल, सब्जी, फल, इत्यादि की खेती करते हैं। आप कहेंगे तो हँसते-हँसते आपको खाने के लिए कुछ फल या सब्जी दे देंगे, मानो कि आप उनके कोई रिश्तेदार हों। शाम के वक्त सफारी खत्म होने से पहले बूढ़ा-बूढ़ी नामक कैम्प में आप हाथी का झुंड देख सकते हैं। यहाँ सुरक्षाकर्मी हाथियों को लुभाने के लिए पेड़ के कटे हुए मूढ़े पर नमक रख देते हैं। इसलिए हाथियों का यहाँ आना निश्चित होता

है। हाथियों का सरदार, मादा हाथी और साथ खेलते हुए नन्हे-नन्हे हाथी, शरारती जवान हाथी, सबकी हरकतें देखकर आपका मन धन्य हो जाएगा।

उद्यान के उत्तर में मठनगुरी में एक फॉरेस्ट बंगला है और उसीके पास एक डॉर्मिटोरी भी है। यह फॉरेस्ट बंगला मानस नदी के बिल्कुल किनारे में एक पथरीला टिला पर स्थित है। वन विभाग से अग्रिम अनुमति लेकर यहाँ एक रात बितायी जा सकती है। पूर्णिमा की रात को नदी के दूसरे तट पर पानी पीने आते जानवरों को आप देख सकते हैं। नदी के दूसरे पार भूटान देश है। सड़क सीमा के कुछ दूर तक भूटान के अंदर जा सकते हैं। बॉर्डर की कुछ ही दूरी पर स्थित है भूटान का एक छोटा शहर- पानबांग। बॉर्डर पोस्ट पर भारतीय होने का परिचय पत्र (वोटर कार्ड, पासपोर्ट आदि) देकर इसके लिए पंजीयन कराना होता है।

पर्यटक को जीप सफारी के अंतर्गत ही मठनगुरी ले जाया जाता है। यहाँ बाहर खाना पकाना या आग जलाना प्रतिबंधित है, पर पर्यटक पैक खाना ले जाकर नदी के किनारे पत्थर पर बैठकर एक छोटा-सा पिकनिक जरूर मना सकते हैं। यहाँ मानस नदी का पानी बहुत ठंडा है। हजार पत्थरों के बीच बहता हुआ पानी, दूसरे पार जंगल और पहाड़ का मनोरम दृश्य किसी के भी मन को शांत कर देता है।

संरक्षण प्रणाली :

मानस राष्ट्रीय उद्यान का संरक्षण बरपेटा रोड में स्थित क्षेत्र निदेशक का कार्यालय से नियंत्रित होता है। इस कार्यालय के अधीन तीन रेंज कार्यालय हैं- बांहबारी, पानबारी और भूया-पारा। इन रेंज कार्यालयों के अधीन नौ बीट कार्यालय, नौ उप बीट और आठ शिविर हैं। इनमें कार्यरत वन सुरक्षा अधिकारी और वन कर्मी बड़ी ईमानदारी और समर्पण की भावना के साथ जंगल के सुरक्षा कार्य में जुटे हुए हैं। पर सिर्फ सरकारी अधिकारी और सुरक्षाकर्मियों से इस विशाल अभयारण्य की सुरक्षा संभव नहीं है। इसलिए पार्श्ववर्ती गाँवों की सहायता अति आवश्यक है। ऐसे पार्श्व गाँवों के अधिवासी और स्वयंसेवी संस्थाओं की सहायता से संरक्षण और शांति व्यवस्था बनाए रखने में सरकार को काफी मदद मिली है। ऐसी कुछ संस्थाएँ हैं- नेचर'स बेकन, आरण्यक, मानस बंधु, ग्रीन मानस आदि।

निष्कर्ष :

ऐसे तो मानस राष्ट्रीय उद्यान बहुत बड़ा है। इस लेख में वर्णित हिस्सा मानस राष्ट्रीय उद्यान के एक रेंज बांसबारी में आता है। हमारा मानना है कि जिन लोगों को प्रकृति से लगाव है, वन्य जीव-जंतुओं और चिड़ियों को प्राकृतिक अवस्था में देखना पसंद है, जिन्हें शांत वातावरण पसंद है, उन्हें एक बार मानस राष्ट्रीय उद्यान जरूर आना चाहिए। और हम दावा करते हैं, जो एक बार आएगा, वह बार-बार आएगा। और हर बार मानस का एक अलग रूप देखकर हैरान हो जाएगा।

किंतु मानस राष्ट्रीय उद्यान की इस अतुल्य सुंदरता और विविधता को हमेशा के लिए बनाए रखने के लिए सभी को सदैव तत्पर रहना होगा। पार्श्व गाँवों में रहने वाले बोड़ो, आदिवासी, नेपाली आदि जनगोष्ठी के लोगों के बीच उद्यान के प्रति आस्था और अपनापन की भावना को बढ़ाने के लिए जागरूकता लानी होगी। गाँववासी और सुरक्षाकर्मियों के बीच सामंजस्य रखना होगा। स्थानीय गाँवों में भी सरकारी सहायता से पर्यटन निवास और पर्यटन संबंधी सुविधाएँ विकसित करने से ये लोग आर्थिक रूप से भी लाभान्वित होंगे और सुरक्षा कार्य में भी सहायता करने के लिए उत्सुक होंगे। उद्यान की सुरक्षा में पर्यटकों को भी अपना योगदान देना होगा और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना होगा। ❑

संदर्भ सूची :

1. बर्निल मानाह, असम साहित्य सभा के बरपेटा रोड सत्र की स्मारिका, प्रकाशक : आयोजक समिति, 2013।
2. https://whc.unesco.org
3. www.assam.gov.in

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग. बी.एच. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम, मोबाइल : 9706321326,
ईमेल : chutiajinakshix@gmail.com

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी अस्मिता की खोज

✍ डॉ. अनुराधा कुमारी साहु

सार संक्षेप :

नारी अस्मिता की खोज, अपने अस्तित्व की तलाश, खुद को मनुष्य के रूप में पहचान दिलाने की जद्दोजहद ने साहित्य में 'नारी विमर्श' की नींव रखी। सामंती युग से लेकर आधुनिक युग तक नारी का जो रूप इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मौजूद है, वह है माँ, बहन, बेटी, पत्नी। नारी में अपनी अभिव्यक्ति की खोज ने सामंती ढाँचे में चरमराहट और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में घबराहट को उत्पन्न कर दिया। शिक्षा ने नारी के इरादों को और मजबूत किया, साहित्य ने उस विचार का पोषण किया। ऐसा नहीं है कि नारी की इस दयनीय स्थिति पर सिर्फ नारी ने आवाज उठाई, वरन् राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, जयशंकर प्रसाद आदि ने उसे इस परिस्थिति से उबारने का प्रयास किया, परंतु नारी अपने संघर्ष को जिस रूप मे व्यक्त कर सकती है, पुरुष नहीं, क्योंक एक ने अनुभव किया और दूसरे ने भोगा है। आठवें दशक की हिंदी महिला लेखिकाओं में मृदुला गर्ग का स्थान महत्वपूर्ण है। मृदुलाजी अपनी रचना जगत में जिस युग-यथार्थ को शब्द देती हैं उसे कह पाने कि हिम्मत सभी में नहीं होती है। उनके लिए समाज में पुरुषों की बराबरी कर लेना या पुरुषों से आगे बढ़ जाना तथा सामाजिक एवं संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर शारीरिक रूप से स्वतंत्र हो जाना मात्र ही 'स्त्री स्वतंत्रता' नहीं है। उनके लिए स्त्री की आजादी का अर्थ तन और मन दोनों की मुक्ति में निहित है। वे 'फेमिनिज्म' का अर्थ दरअसल सोच की जकड़बंदी से मुक्ति के रूप में लेती हैं। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, संस्कारों आदि से मुक्ति पा लेना ही उनके लिए स्त्रीवाद है। नारी मनोभावों तथा संवेदनाओं की सूक्ष्म पड़ताल मृदुलाजी के उपन्यासों के आधार पर इस आलेख में किया जा रहा है।

बीज शब्द : अस्मिता, अस्तित्व, बोल्ड, समाज, स्त्री-विमर्श, साहित्य, उपन्यास, गाथा आदि।

पद्धति : प्रस्तुत शोध आलेख नारी की अस्तित्व की खोज पर आधारित होने के कारण मैंने इसके आरंभ में नारी विमर्श से जुड़े कुछ विवरणों को प्रस्तुत किया है तथा शेष अध्ययन में मृदुलाजी के उपन्यासों में वर्णित विचारों को विश्लेषणात्मक शैली में विवेचित किया है। अत: इस शोध आलेख को लिखने के क्रम में शोध पद्धति के रूप में विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक और कहीं-कहीं आलोचनात्मक शैली का निर्वाह किया गया है।

प्रस्तावना :

मानव समाज जैसे-जैसे सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ , दोयम दर्जे के पायदान पर खड़ी नारी का भी अपनी अभिव्यक्ति को लेकर सचेत होना ही संघर्ष का प्रारंभ रहा और समय के साथ इस संघर्ष का सिर्फ स्वरूप बदलता रहा है। सामंती युग से लेकर आधुनिक युग तक नारी का जो रूप इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में मौजूद है वह है-माँ, बहन, बेटी, पत्नी। इससे ज्यादा उसने कुछ और बनाने की कोशिश की तो धर्म और रीति-रिवाज की बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं। वर्तमान समय में भी नारी बेचारी है। शिक्षित एवं आत्मनिर्भर स्त्री को कदम-कदम पर शोषण का शिकार भी होना पड़ता है। इस शोषण और उसके विरुद्ध स्त्री के नितांत निजी संघर्षों की लंबी करुण कहानी है। उसे न केवल बाह्य समाज, बल्कि स्वयं अपने परिवार से और यहाँ तक कि खुद से भी निरंतर संघर्षरत रहना पड़ा है। इसी संघर्ष को सिमोन द बउआर ने अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में बताया था कि ''स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बना दिया जाता है।''[1] यह कथन देश-विदेश की सभी स्त्रियों के संघर्ष की गाथा को बयाँ करता है। भारतीय समाज में तो स्त्री को हमेशा से एक वस्तु के रूप में देखा जाता रहा है। रेखा कास्तकार स्त्री विमर्श के सरोकार पर बात करते हुए कहती हैं कि ''स्त्री विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल उसके संघर्ष एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्मे नए प्रश्नों के टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री की मुक्ति का मूल उसके मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का प्रश्न है।''[2] इसी स्वीकारोक्ति की तलाश करते हुए प्रभा खेतान जी ने जब सिमोन द बउआर की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का हिंदी में अनुवाद किया तब उन्होंने उसकी भूमिका में लिखा है कि- ''हम भारतीय कई तहों में जीते हैं। यदि हम मन की सलवटों को समझते हैं, तो जरूर यह स्वीकारेंगे कि औरत का मानवीय रूप सहोदरा कही जाने के बावजूद स्वीकृत नहीं है। लोगों को उससे उम्मीदें बहुत होती हैं। वह अपनी सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए...स्पष्टवादिता उसका गुनाह समझा जाता है... ।''[3] साहित्यकार के जीवन-जगत की अनुभूतियाँ और कल्पना के समन्वय का वास्तविक जगत साहित्य होता है। लेखक समाज की उन सभी प्रतिकूल परिस्थितियों को आत्मभूत करता है, परिवेशगत विसंगतियाँ रचनाकार की संवेदनशील को गढ़ती हैं और परिणामस्वरूप उन विचारों का प्रभाव उसके साहित्य में किसी न किसी रूप में देखा जाता है। समकालीन साहित्य की प्रत्येक विधा नारी जीवन के संघर्षों को स्वर प्रदान करती है। नारी का संघर्ष पुरुषों से बराबरी करने या उनसे आगे निकल जाने का नहीं, बल्कि उसका संघर्ष समाज में, परिवार में, यहाँ तक कि अपने आप में स्वयं को स्थापित करने तथा अपनी अस्मिता की खोज के लिए है।

'स्त्री विमर्श' स्त्री अस्मिता की खोज और उससे उत्पन्न संघर्ष ने कोई बहुत बड़ा चमत्कार तो नहीं किया, परंतु समाज की मानसिकता में आंशिक बदलाव की स्थिति जरूर उत्पन्न की है। स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए, अनजाने पहलुओं के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है। वह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष है। समकालीन कथा साहित्य का वजूद तब तक पूरा नहीं माना जाता, जब तक उसमें स्त्री जीवन के उन अनछुए पहलू को स्थान न दिया जाए। 'अस्मिता' शब्द मात्र शब्द नहीं वरन् अभिव्यक्ति है स्वयं के होने की। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं कि -''अस्मिता को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मै हूँ' से लेकर 'मैं किस लिए हूँ' तक की अंतर्यात्रा कई पड़ावों से होकर अंतत: अस्मिता के गंतव्य पर पहुँचकर ही पूरी होती है।''[4]

पश्चिम में 'स्त्री विमर्श' पर चर्चा बहुत पहले ही आरंभ हो चुकी थी, लेकिन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का प्रादुर्भाव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है, जिसमें महिला रचनाकारों ने स्त्री के अधिकारों, शिक्षा, स्वावलंबन आदि पर लेखन किया। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की अस्मिता यानी पहचान को दिलाने, मनुष्य रूप में स्थापित करने का प्रयास है। यह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के विरूद्ध संघर्ष की गाथा है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की देहवादी दृष्टिकोण से मुक्ति की पक्षधरता के साथ-साथ

उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समानता की अभिव्यक्ति भी है। यह मात्र देह का विमर्श नहीं, बल्कि रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है।

आठवें दशक की हिंदी महिला लेखिकाओं में मृदुला गर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है। कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, मंजुल भगत, चंद्रकिरण सोनारिक्सा, उषा प्रियम्वदा, ममता कालिया आदि लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त विषमता, राजनैतिक-आर्थिक दायरे में स्त्री, पारिवारिक घुटन आदि को अपने कथा साहित्य में प्रमुख स्थान दिया है। अन्य विषयों की तुलना में स्त्री मुक्ति का प्रश्न ही इनके साहित्य के केंद्र में है। मृदुला गर्ग ने अपने कथा साहित्य में युग-यथार्थ कि पृष्ठभूमि पर टूटते परिवेश में जीवन कि परिवर्तनशीलता तथा नारी की नई जीवन दृष्टि को अभिव्यक्ति दी है । विविध प्रसंगों के माध्यम से नारी की दयनीय अवस्था, कामेच्छा, परपुरुष संबंध, पारिवारिक समस्याएँ आदि को अपने साहित्य में स्थान दिया है। साहित्य का आधार 'स्त्री' जरूर है, परंतु उनका परिस्थितियों को देखने का नजरिया समकालीन लेखिकाओं की तरह नहीं हैं। उनके लिए समाज में पुरुषों की बराबरी कर लेना या पुरुषों से आगे बढ़ जाना तथा सामाजिक एवं संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर शारीरिक रूप से स्वतंत्र हो जाना मात्र ही स्त्री स्वतंत्रता नहीं है। उनके लिए स्त्री की आजादी का अर्थ तन और मन दोनों की मुक्ति में निहित है। वे 'फेमिनिज्म' का अर्थ दरअसल सोच की जकड़बंदी से मुक्ति के रूप में लेती हैं। समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, संस्कारों आदि से मुक्ति पा लेना ही उनके लिए स्त्रीवाद है। मृदुलाजी नारीवाद के संबंध में कहती हैं कि- ''नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है ? क्या नहीं ? कोई मुखौटा नहीं की स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए।''[5] स्त्री और पुरुष का संबंध मृदुला गर्ग के साहित्य का केंद्रीय विषय है। वैसे तो कई उपन्यासकार स्त्री और पुरुष संबंधों को पारंपरिक, नैतिक मान-मर्यादाओं के घेरे में रखकर चित्रित करते हैं, परंतु मृदुलाजी ने कभी भी इन बंधनों को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना है कि दाम्पत्य जीवन में एकरसता तथा

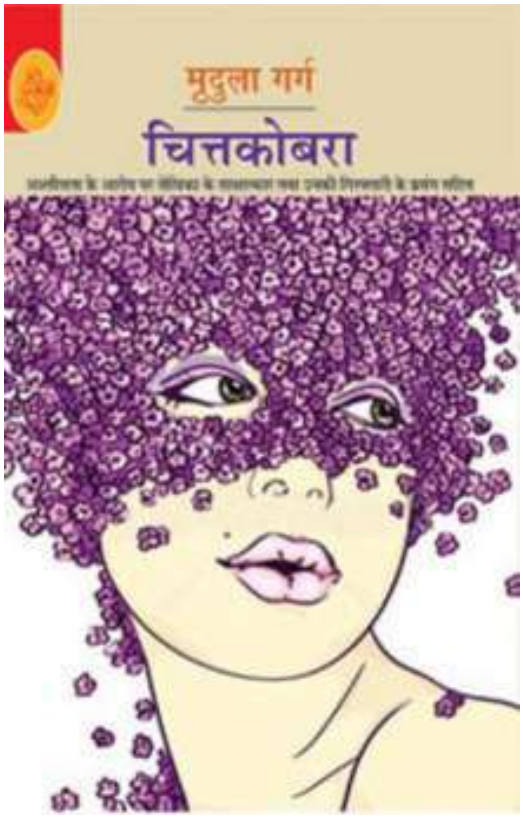

आपसी सामंजस्य न होने के कारण या प्रेम के आभाव में विवाहेतर संबंध स्थापित होते हैं। वे शारीरिक संबंधों को नैतिकता-अनैतिकता अथवा पाप-पुण्य से नहीं जोड़ती हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में उनकी कथा नायिका की मान्यता- ''प्यार करना कला नहीं, जरूरत है'', मृदुलाजी की प्रेम संबंधी मौलिक और बोल्ड मान्यता को रेखांकित करती है। उपन्यास की पात्र मनीषा का यह कहना कि ''यूँ तो इंसान की न जाने कितनी जरूरतें होती हैं, लेकिन यह जरूरत ऐसी है, जिसमें कोई अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित रहता है। बिना शोषण इसकी पूर्ति भी तभी हो सकती है जब दोनों की जरूरत एक हो। जब जरूरतें एक हों तो शरीर का मिलन अद्भुत अनुभव बन जाता हैं।''[6] मृदुलाजी की दृष्टि में प्रेम का यथार्थ 'शरीर' है। उपन्यास में मनीषा प्रेम को प्राप्त करने के लिए जीतेन को छोड़ मधुकर की ओर आकर्षित होती है, लेकिन उसे पूर्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा प्रेम जो उसे आत्मसंतुष्ट कर दे, एक अंतहीन

तलाश बन कर रह जाता है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या नारी के जीवन की रिक्तता है, जिससे मनीषा पूरे उपन्यास में जूझती नजर आती है। उपन्यास में नायिका पति जीतेन से तलाकशुदा होने पर भी जब दुबारा चार साल बाद उससे मिलती है तब जीतेन के प्रति उसके शारीरिक समर्पण पर अधिकांश विचारकों ने प्रश्न चिह्न लगया है और उसे स्त्री की मर्यादा के विरुद्ध बताया है। डॉ. शीलप्रभा मृदुला गर्ग का समर्थन करते हुए इसे आधुनिकता और विचारों का लचीलापन मानते हुए कहती हैं कि ''यदि यह स्थिति पूर्व युग की होती तो पति को पत्नी की सूरत भी सहन नहीं हो सकती थी। किंतु आज के युग में जहाँ विचार प्रौढ़ हो चुके हैं उनमें लचीलापन आ गया है, ऐसा क्षणिक पुनर्मिलन भी संभव है।''[7] उपन्यास के अंत तक नायिका को यह अहसास हो जाता है कि उसे अपने खालीपन को किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के द्वारा नहीं, बल्कि स्वयं भरना होगा और वह खुद लेखन कार्यों से जुड़ जाती है। इससे उसे आत्म-संतुष्टि प्राप्त होती है। उसको एक अलग पहचान मिलती है। वह लेखिका के रूप में समाज में प्रतिष्ठित होती है। इस उपन्यास के द्वारा मृदुलाजी ने नारी की अस्मिता, संघर्ष, प्रेम की खोज आदि प्रश्नों से निकालने की राह भी दिखाई है।

मृदुला गर्ग के इस उपन्यास में पुराने नैतिक ढाँचे का विरोध तथा प्रेम संबंधी नई नैतिकता की परिभाषा गठित हुई है । स्त्री स्वयं को पुरुष की दृष्टि से देखती आ रही थी। वह अपने जीवन की सार्थकता किसी पुरुष व्यक्ति से जुड़ने में मान रही थी। लेकिन इस उपन्यास कि नायिका अपने जीवन कि पूर्ति सामाजिक रूप से स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने में मानती है। योगेश गुप्त के शब्दों में, ''मृदुला गर्ग अपने साहित्य में वैयक्तिक से सामाजिक और सामाजिक से वैज्ञानिक, वैज्ञानिक से दार्शनिक की यात्रा करती दिखाई देती हैं। थीम की कटेगरी के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नहीं है और न ही कोई आग्रह। घटनाओं और चरित्रों को सहज भाव से व्यक्त करती हैं और न यह मानती हैं कि थीम जितना नया होगा कला उतनी ही निखरेगी। प्रयोगधर्मी कथाकार होने के नाते उनकी संभावनाओं की शायद ही कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है। अच्छी बात यह है कि कथ्य के स्तर पर वह शत-प्रतिशत फासिस्ट हैं और साहित्य में लंबी खोज की यात्रा की पहली शर्त शायद यही है।''[8]

मृदुलाजी ने विवाह-पूर्व प्रेम की अपेक्षा विवाहेतर प्रेम का चित्रण अपने उपन्यासों में अधिक किया है। इस प्रेम को समाज ने सदा नकारा है। वह अपने साहित्य में पुरानी रूढ़ियों और वर्जनाओं का अतिक्रमण करती हैं। संभवत: यही कारण है कि 'चित्तकोबरा' उपन्यास को विवादों के कठघरे में खड़ा होना पड़ा। इस उपन्यास में मृदुलाजी ने प्रेम का चित्रण जिस रूप में किया है, वह सामाजिक मानदंड पर थोड़ा बोल्ड है, और शायद यही बोल्डनेस लोगों को पसंद नहीं आई। प्रस्तुत उपन्यास में पारस्परिकता के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करके स्त्री को अनेक तथाकथित मर्यादा रूपी बंधनों से मुक्ति दिलाई है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु, रिचर्ड और महेश तीन पात्र हैं। मनु का विवाह महेश से हो चुका होता है, रिचर्ड मनु के जीवन में बाद में आता है। महेश और मनु ऐसे पति-पत्नी हैं, जो एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। महेश मनु की सभी जरूरतें पूरी करता है। मनु भी अपना पत्नी धर्म निभाती है तथापि उनके रिश्ते सहज नहीं हैं। इस असहजता के कारण ही मनु रिचर्ड की तरफ आकर्षित होती है। मृदुलाजी के उपन्यासों की विशेषता यह है कि वे कभी अपनी नायिका को गलत नहीं साबित करतीं, बल्कि नायिका के मुख से ही कहलवाती हैं कि महेश बहुत अच्छे हैं, मेरा बहुत ख्याल रखते हैं, मेरी सभी जरूरतों को पूर्ण करते हैं।... इस तरह यह उपन्यास मनु- महेश-रिचर्ड के त्रिकोणात्मक प्रेम संबंधों की कथा बन जाता है। इस उपन्यास में मृदुलाजी प्रेम को स्त्री-पुरुष संबंधों के धरातल से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले जाती हैं। वे कहती हैं कि - ''एक से निस्वार्थ प्रेम करने पर अहम् का धीरे-धीरे विभाजन होता है और व्यक्ति उस बिंदु पर पहुँच जाता है, जहाँ मानव मात्र से प्रेम के आदर्श तक पहुँचना सरल और संभव होता है चाहे वह रिचर्ड में देखा जाय या मदर टेरेसा में।''[9]

'चितकोबरा' में मृदुला गर्ग ने आज के परिवेश में विवाह जैसे संस्था की निरर्थकता को भी व्याख्यायित किया है। वे प्रेम, विवाह और सेक्स जैसे मूलभूत तथ्यों

को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुनती हैं। वर्तमान समय में प्रेम आत्मीयता का भाव समाप्त हो गया है और वह सिर्फ भोग और वासना की वस्तु बन कर रह गया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने पारंपरिक मान्यताओं की बेड़ियों स्त्री को मुक्त किया है ।

'कठगुलाब' उपन्यास स्त्री के संघर्षों को दर्शाने वाला बहुचर्चित उपन्यास है। मृदुलाजी का यह उपन्यास नारी दमन और शोषण के मध्य उसके संघर्ष की गाथा कहता है। इस उपन्यास में नारी पर पुरुष द्वारा किए जाने वाले आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण का प्रतिफलन

आत्मनिर्भरता तथा पुरुष सत्ता में स्वयं को प्रतिष्ठित करने के लिए की गई जद्दोजहद की गाथा है। इस उपन्यास में उन्होंने पूरब-पश्चिम कह कर संसार के सभी पुरुषों की मानसिकता पर कटाक्ष किया है। बस की भीड़-भाड़ में धँसी लड़की हो या सुनसान इलाके में पैदल चलती लड़की, पुरुष की लार टपकती नजरों से उसका बच पाना असंभव है। स्त्री पर हो रहे शोषण को दर्शाते हुए उपन्यास में लेखिका एक जगह पर नायिका नमिता द्वारा कहलवाती हैं कि ''कैसी अभागिने हैं हम दोनों, मेरी जिंदगी माँ ने चौपट की, तेरी पिता ने।''[10] इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री की अस्मिता के सवाल को उठाया है और लेखिका ने स्त्री को स्त्री रूप में स्थापित किया है। जिस तरह कठगुलाब के बीज को पानी न दें तो वह सूख जाता है, उसकी कलियाँ नहीं खिलतीं, ठीक उसी प्रकार जब तक स्त्रियों को अपनेपन और सम्मान रूपी जल से भिगोया न जाए तब तक वह भी कठगुलाब के समान कठोर बनी रहती हैं। जब तक अपनापन और सम्मान नहीं मिलता इसकी कलियाँ भी नहीं खिलतीं। फूल नष्ट हो जाते हैं और बस बीज बचा रह जाता है। यही दर्शन इस उपन्यास की स्त्रियों को प्रेरित करता है और वह अपने स्त्रीत्व की सम्पूर्ण सार्थकता 'ममत्व' में समझती हैं और तमाम संघर्षों के बाद ही सही अर्थों में उसे पा ही लेती हैं। ममत्वपूर्ण स्त्रीत्व की इस तलाश की प्रक्रिया में ही यह उपन्यास पूर्ण होता है।

अपने अन्य समकालीनों की तरह मृदुलाजी केवल स्त्री की आर्थिक, शारीरिक स्वतंत्रता और अधिकारों की बात ही नहीं करतीं, अपितु स्त्री के राजनीतिक, संवैधानिक अधिकारों के लिए भी आवाज उठाती हैं। अपने 'वंशज' उपन्यास में उन्होंने स्त्री को उसके प्रदत संवैधानिक अधिकारों से भी वंचित कर दिए जाने के प्रश्न को बड़ी मजबूती से उठाया है। प्रस्तुत उपन्यास में सुधीर, उसकी पत्नी और बहन रेवा की कहानी है। 'वंशज' उपन्यास में स्त्री को पैतृक संपत्ति में अधिकार देने की बात उठाई गई है। आज भी उसके अधिकारों की अवहेलना की जा रही है, जबकि आज हमारे संविधान में यह प्रारूप है कि पिता की संपत्ति में पुत्री का बराबर का अधिकार है। लेकिन समाज अभी भी इस तथ्य को अपना नहीं पा रहा है। इस सच्चाई को उजागर किया गया है। बेटी-बेटा में भेद न करने का संदेश देने वाला भी इस सच को पचा नहीं पा रहा है।

'मिलजुल मन' उनके अब तक के सभी उपन्यासों से अलग ही तरह का उपन्यास है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। आत्मकथा लेखक से जिस ईमानदारी, साफगोई और विश्वसनीयता की माँग करती है, उपन्यासों की ओट में उससे बचने की गुंजाइश बनी रहती है। यौवन की बीहड़ सच्चाइयों को उपन्यास की सिलवटों में छिपते-छिपाते आसानी से दिखाया जा सकता है। यह उपन्यास दो बहनों गुलमोहर और मोगरा की कहानी है, जो वास्तव में मंजुल भगत और मृदुला गर्ग की कहानी ही बयाँ करती है। यहाँ मोगरा स्वयं मृदुला गर्ग हैं और गुलमोहर उनकी बड़ी बहन मंजुल भगत, जिसमें गुल की कहानी मोगरा कहती चलती है और कभी-कभी बीच-बीच में खुद गुल भी सूत्र थाम लेती है। इसलिए

इसका शीर्षक 'मिलजुल मन' रखा गया है। वैसे इस उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को समझाते हुए मृदुलाजी एक साक्षात्कार में कहती हैं कि–''मन का अर्थ अत्यंत बहुआयामी है वह दिल भी है, मस्तिष्क भी, चेतना भी और कल्पना भी, अस्तित्व भी वही है। मन के साथ मिलकर जो काम कर सके या जो अपने मन को पहचान ले वही सही मायने में अपने अस्तित्व को पहचान सकता है। इसलिए इसका नाम 'मिलजुल मन' रखा।''[11] मृदुलाजी को इस उपन्यास में भी स्त्री अस्मिता के पक्ष में जब–जब भी मौका मिला है, उसका पूरा फायदा उठाया है। आत्मनिर्भरता को वे नारी सशक्तिकरण हेतु पहली शर्त मानती हैं। अपने इस उपन्यास में भी उन्होंने आत्मनिर्भरता के महत्व को बखूबी रेखांकित किया है। उपन्यास के आरंभ में वे एक जगह पर गुल की आत्मनिर्भरता का संकेत देते हुए कहती हैं कि –''अपना बायां हाथ कलाकार है, दायां मजदूर।''[12] इस कथन से ज्ञात होता है कि वे आधी दुनिया को अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए संदेश देती हैं कि वर्तमान समय में स्त्रियों में इतनी काबिलियत है कि वह बाहर और भीतर दोनों का कार्य एक साथ कर सकती हैं। जिस प्रकार गुल का बायां हाथ कलाकार है, यानी उसकी सृजनात्मकता तथा सौंदर्य का बोधक है तो दायां हाथ उसकी कार्यकुशलता और मजबूती का प्रतीक है। यह सौंदर्य और यह कार्यकुशलता पुरुष बहुत प्रयत्न के उपरांत भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में समस्याओं के साथ उसका निदान भी बताया है। वे अपने पात्रों के संघर्ष को भौतिकता के धरातल से उठाकर तार्किक दृष्टि के साथ अपने अस्तित्व और इच्छाओं के लिए निर्णय लेते हुए दिखाती हैं। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में स्त्री को वस्तु नहीं, मनुष्य के गौरव से गौरवान्वित करती हैं। ❑

संदर्भ :

1. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स, 2008, नई दिल्ली।
2. रेखा कास्तकार, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, पृ. 25, राजकमल प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली।
3. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, 1992, (भूमिका भाग से) हिंदी पॉकेट बुक्स, 2008, नई दिल्ली।
4. मृणाल पाण्डेय, स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति, पृ. 14, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, नई दिल्ली।
5. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 93, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली।
6. मृदुला गर्ग, 2002, उसके हिस्से की धूप, पृ. 44, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. डॉ. शीलप्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामजिक सन्दर्भ, पृ. 155, ईस्टर्न बुक लिंकर्स,1998, नई दिल्ली।
8. योगेश गुप्त, नारी का रचना संसार, आजकल पत्रिका –दिसम्बर 1977, पृ. 35।
9. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, पृ. 96, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
10. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, पृ. 20, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
11. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 110, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।
12. मृदुला गर्ग, 2009, मिलजुल मन , पृ. 21, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, डिगबोई कॉलेज, डिगबोई
मोबाइल–9435703666

संत दादू और उनकी प्रासंगिकता

✍ प्रो. जगमल सिंह

दादू संत साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। कबीर के तत्व-बोध को आत्मसात कर उन्होंने उसे जनसामान्य तक पहुंचाया है। संयोग से जन्मकाल की विसंगतियां भी कबीर जैसी ही हैं। वाराणसी के लहरतारा तालाब के किनारे नीरू-नीमा जुलाहा को कबीर मिले तो अहमदाबाद की साबरमती नदी में बहते हुए लोधीराम नामक ब्राह्मण को दादू के दर्शन हुए। यह घटना फाल्गुन सुदि 2, वृहस्पतिवार सं. 1601 को हुई थी। इसी तिथि को दादू की जन्मतिथि मान लिया गया। कुछ विद्वानों का मानना है कि दादू पैदा नहीं हुए थे, वे तो नित्य पूर्ण ब्रह्म नारायण हैं, उन्होंने अपने को शिशु रूप में प्रकट किया। गुजराती लोधीराम ब्राह्मण ने उन्हें देखा और उठाकर घर ले गए। परमेश्वर का जन्म, मृत्यु या विवाह हो ही नहीं सकता। कुछ लोग बंगाल के बाउल संतों में गाये जाने वाले प्रणति गान में कबीर, नानक, दादू आदि की प्रणतियों के गान के आधार पर इन्हें मुसलमान सिद्ध करते हैं। इस तथ्य और तर्क से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी दीर्घ सीमा तक सहमत हैं। वे लिखते हैं - 'एक प्रणति गान में मैंने देखा 'श्री गुरु दाउद बंदि दादू यार नाम' अर्थात् उसी दाउद गुरु की हम वंदना करते हैं, जिसका नाम दादू है। यह प्रणति यदि सही है तो दादू जन्मत: मुसलमान सिद्ध होते हैं, फिर तो देखा जाता है कि कबीर के शिष्य कमाल, कमाल के शिष्य दादू, दादू के शिष्य रज्जब, इस प्रकार साधकों की एक लंबी धारा चली आ रही है, जो जन्मत: तो मुसलमान हैं, पर घनिष्ठ भाव से हिंदू भाव युक्त हैं।' महिमा अंग में वर्णन मिलता है - 'धुनि गर्भो उत्पन्नो दादू योगेन्द्रो महामुनि।[1] उत्तम योग धारणं तस्मात क्यां न्याति कारणा॥'

दादू की जाति जो भी रही हो और जाति पर ज्यादा तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान', पर यह सत्य है कि वे अपने समय के प्रभावशाली संत-साधक थे। आज भी दादूपंथी नागा साधुओं का कुंभ मेले में कितना उच्च स्थान है, यह सभी जानते हैं। दादू गृही थे। पूर्व विवाहित होकर ही संन्यासी और साधक होना होगा, इसका तद्नुकूल आचरण कबीर ने किया था और उसी मार्ग पर दादू भी चले। कबीर की शिक्षा सिमटकर उसी पहली धारा में बह गई, जिसके किनारे-किनारे नानक, दादूदयाल, सुंदरदास और मलूकदास आदि संतों के पर्ण कुटीर बसे हुए हैं।'[2]

दादू एकनिष्ठ भाव से ईश्वर की आराधना में रत रहने वाले संत थे। तर्क-वितर्क और वाद-विवाद से कभी संगति नहीं हुई। उन्होंने सदैव प्रभु को मांगा, प्रभु से नहीं मांगा। ऐसा संत कभी पंथों के बंधन में नहीं बंध सकता। उनका स्पष्ट मानना था

कि संप्रदायों की दलबंदी करके अगर सत्य को खोजने चलोगे तो सत्य को ही खो दोगे। इनकी शिष्य परंपरा में हिंदू और मुसलमान दोनों हैं। दादू संप्रदाय या दादू पीर को 'परब्रह्म संप्रदाय' भी कहा जाता है। दादू ने अपने नाम पर कोई संप्रदाय बनाया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। 'यह दादू के किसी शिष्य का किया हुआ नामकरण प्रतीत होता है। वे एक सिद्ध साधक थे। सत्य और सदाचार के प्रति उनका आग्रह था।'[3] परंतु क्षितिमोहन सेन के अनुसार, 'परब्रह्म संप्रदाय' के संस्थापक संत दादू ही थे। उन्होंने संप्रदाय की स्थापना गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरांत की।'[4] एच.एच. विल्सन का भी ऐसा ही मत है। दादू ने प्रस्तुत पंथ की स्थापना अपने साथियों की मंडली में आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा के द्वारा की थी। पंथ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श उनके एक पद में दिखाई पड़ता है –

'भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वैष रहित पंथ गहि पूरा, अवरण एक आधार।
वाद विवाद काहू सौं नाहीं, मांही जगैथे न्यारा।
समदृष्टि सुभाइ सहज में, आपहि आप विचारा।[5]

दादू पंथ पर कबीर पंथी विचारधारा के अतिरिक्त सूफी दर्शन तथा उपनिषद का प्रभाव भी है। यह अपने समय का कितना प्रभावी पंथ रहा है, इसका प्रमाण दादू जन्म-लीला परची में प्राप्त होता है। सम्राट अकबर, अबुल फजल, राजा भगवंत सिंह, बीरबल, बुलंद खाँ, जैमल, माधवदास आदि जैसे अनेक विशिष्ट लोगों पर दादू के विचार दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा था। बादशाह अकबर तो इतना प्रभावित हुआ कि उसने हिजरी सन् के बदले इलाही सन् नामक नया वर्ष चलाया। स्वनामांकित मुद्रा के स्थान पर भगवान के नाम की मुद्रा का प्रवर्तन किया। यह एक महान घटना है। बादशाह अकबर ने दादू जी को फतेहपुर सीकरी बुलाया था। दादू और बादशाह अकबर की भेंट सन् 1586 ई. फतेहपुर सीकरी में हुई थी और वार्तालाप चालीस दिनों तक चला था। दादू के देह त्याग के पश्चात पंथ कई उप-संप्रदायों में बंट गया। खालसा, नागा, उत्तर गढ़ी, विरक्त और खाकी ये सभी दादू पंथी उप-संप्रदाय हैं।

संत दादू का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब संपूर्ण समाज अज्ञान के अंधकार, शोषण के साम्राज्य और आडंबरयुक्त धार्मिक परंपराओं के जाल में जकड़ा हुआ था। दादू ने अपनी वाणियों से समाज को भयमुक्त और आडंबररहित बनाते हुए परमात्मा की सरल भक्ति की ओर उन्मुख किया। उनका ब्रह्म संबंधी विचार कबीर के ब्रह्म की धारण के निकट है। उनकी मान्यता है कि परमतत्व सर्वत्र है और समान रूप से व्याप्त है। दूध में घृत के समान सभी प्राणियों में रम रहा है। शब्द ज्ञान में निपुण प्रवचन देने वाले अनेक लोग हैं, लेकिन दूध से घृत रूप में ब्रह्म को मथकर निकालने वाले लोग बिरले हैं –

'घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सबही ठौर।
दादू वक्ता बहुत हैं मथि काढ़े ते और॥[6]

इसलिए दादू ब्रह्म की खोज में न जंगल जाते हैं और न धुनी रमाते हैं। काया को भी क्लेश नहीं देते हैं। वे काया को ही मस्जिद और मंदिर मानते हैं –

'दादू यह मसीत यहु देहुरा, सतगुरु दीया दिषाइ।
भीतर सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाई॥'[7]

दादूकालीन समाज में मूर्ति-पूजा के नाम पर भ्रष्ट आचार को बढ़ावा मिल रहा था। मठ-मंदिरों पर पंडा-पुरोहितों का कब्जा था। भगवत दर्शन के नाम पर लोगों को ठगा जा रहा था। दक्षिण भारत की स्थिति तो और विकट थी, जहां भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, वहां के मंदिरों में भगवान की सेवा के नाम पर देवदासियों की व्यवस्था ने देवालयों को भोगालय बना दिया। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा कि देवता झूठे हैं और उनकी सेवा मिथ्या –

'झूठे देवा, झूठी सेवा, झूठी करे प्रसारा।
झूठी पूजा, झूठी पाती, झूठा पूजनहारा॥[8]

हिंदुओं में 'तीर्थ यात्रा' और मुसलमानों में 'हज' को श्रेष्ठ माना गया है। लोक में ऐसी मान्यता प्रचलित है कि अनेक पाप या दुराचार करते हुए भी तीर्थयात्रा या हज यात्रा कर ली जाए तो सारे पाप कर्म धुल जाते हैं।

गंगा स्नान मात्र से मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। इन बाह्याडंबरों का विरोध सभी संतों ने किया है। संत दादू तीर्थ यात्रा की निरर्थकता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि प्रभु की खोज में कोई द्वारका जाता है, कोई काशी में गंगा की सीढ़ियों पर चक्कर लगाता है तो मथुरा-वृंदावन के वन-उपवनों में खोजने का प्रयास करता है। मनुष्य को यह नहीं पता है कि वह अविनाशी हमारे घट के अंदर है -

'दादू कोइ दौड़े द्वारका, कोई काशी जाहिं।
कोई मथुरा को चले, साहब घट ही माहिं॥'[9]

तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर जो आडंबर प्रचलित थे, उसने समाज को विशृंखलित कर दिया था। जप, तप, माला, तिलक आदि बाह्य विधानों को ही भक्ति का वास्तविक प्रतीक मान लिया गया था। आडंबरयुक्त धार्मिक रुढ़ियों के अपनाए जाने के कारण समाज के विभिन्न वर्गों के संप्रदायों में वैमनस्यता बढ़ गई थी। दादू की संवेदनशील संत दृष्टि से ये बुराइयां ओझल नहीं हो सकीं। उन्होंने कड़ा प्रहार करते हुए कहा कि सारा जगत अंधा हो गया है, किसी को दिखाई नहीं देता। प्राय: लोग पत्थरों में कल्पित वभिन्न देवी-देवताओं को पूजते हैं। यह एक प्रकार का आत्मघात है। जो निरंजन ब्रह्म सभी के अंत:करण में विद्यमान है, उसकी उपासना कोई नहीं करता। लोग भ्रमवश भैरों, भूत-प्रेतादि की पूजा करते हैं, लेकिन जो सबका सिरजनहार है, उसको कोई प्राप्त करना नहीं चाहता है -

'जग अंधा नैन न सूझरे, जिन सिरजे ताहि न बूझरे।
पहण की पूजा करे, करि आतम घात॥
भैरों भूत सब भ्रम के, पसु प्राणी ध्यावै।
सिरजनहार सबनि का, ताकों नहीं णावै॥'[10]

संत कबीर की भांति दादू ने भी पूर्ण प्रखरता से जप, माला, छापा, तिलक आदि का विरोध किया है। उनका मानना है कि ब्रह्म माला फेरने से किसी सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। सद्गुरु ने मन में ही माला का निर्माण कर दिया है। मैं मन में प्रभु का स्मरण करता रहता हूं। यही सच्चा जप है -

'सद्गुरु मामला मन दिया परम जाप यूँ होय।
बिन हाथों निस दिन जपे, परम जाप यूँ हो॥
मामला तिलक सूँ कुछ नहीं काहुँ सेती काम।
अंतर मेरे एक है, अहि निस उसका नाम॥'[11]

दादू पंथ की शिष्य सूची बहुत दीर्घ है। दादू की वाणी उस युग में भी प्रासंगिक थी और आज भी प्रासंगिक है। वे एक महान संत थे, जिनके उपदेशों से राजा-रंक सब प्रभावित हुए। दादू की वाणी में वह अक्खड़ता नहीं है, जो कबीर में है। दादूजी पर्यावरण की रक्षा करना चाहते थे। अत: वनस्पति की रक्षा का उपदेश देते थे। वे एक महान संत थे, जिन्होंने अकबर बादशाह से गोहत्या का वध निषिद्ध करा दिया था। वे अभिनंदनीय संत हैं। भारत के समाज को उन्होंने जो मार्ग दिखाया, वह मानवता का मार्ग था।

मध्यकालीन भारतीय समाज वर्ण और जाति व्यवस्था के चंगुल में फंसा छटपटा रहा था। यद्यपि जाति व्यवस्था प्राचीन समय से चली आ रही थी, तथापि इतनी कठोर नहीं थी। जातियों का आपस में परिवर्तन होता रहता था। आचार्य क्षितिमोहन सेन का जाति व्यवस्था पर गंभीर अध्ययन है। वे लिखते हैं - ''आठवीं शताब्दी तक डोम-चमार जैसी नीची जातियाँ भी अपने पूर्वजों के ब्राह्मण होने का दावा करती थी, यद्यपि ब्राह्मण उन्हें स्वजातीय नहीं मानते थे। ऐसी ही कुछ छोटी जातियाँ थीं, जो अपने को क्षत्रिय कहती थीं अथवा बन गयी थीं।'[12] इन्हीं जातिगत व्यवस्थाओं के बीच अनेक संतों का प्रादुर्भाव हुआ, जो अधिकतर नीची जातियों से थे। अतएव इनके स्वर में विद्रोह और आक्रोश होना स्वाभाविक था। इन संतों ने निर्भीक तीक्ष्ण वाणी में भेदमूलक जाति व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया। दादू दयाल ने भी जाति-पाति,

ऊंच-नीच जैसी मानव विभेदक भावना को संपूर्ण समाज के लिए निरर्थक बताया। उनके विचार से सभी मानव एक हैं। सृष्टि में सभी कुंजर से लेकर कीट तक एक ही परमात्मा के अंश हैं। उसका कोई वर्ण नहीं है, किंतु सभी वर्ण उसी के हैं :

'दादू समि करि देखिए, कुंजर कीट समान।
दादू दुविधा दूर करी, तजि आपा अभिमान॥'[13]

11वीं शताब्दी के पश्चात इस्लाम के भारत में पूर्णत: स्थापित होने के साथ ही उसका संघर्ष हिंदू धर्म-संस्कृति के साथ होने लगा और लगातार बढ़ता गया। इस्लाम एक सुसंगठित संप्रदाय था। उसके आचार-सिद्धांत भारतीय धर्म साधना के स्थापित सिद्धांतों से बिल्कुल भिन्न थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, ''अब जिस प्रतिद्वंद्वी से काम पड़ा था, वह बहुत वर्जनाग्राही था। अर्थात् वह निर्दयतापूर्वक अन्य मतों को तहस-नहस करने की दीक्षा ले चुका था और धार्मिक वर्जनशीलता ही उसका मुख्य अस्त्र था।'[14] इस्लाम की संकीर्ण धार्मिक चिंतन और कट्टरता ने हिंदू-मुसलमानों के बीच नफरत की अभेद्य दीवार खड़ी कर दी। इसलिए संतों को समरसता और आपसी धार्मिक सद्भाव बढ़ाने हेतु आगे आना पड़ा। दोनों धर्मों में बाह्याडंबर और रुढ़िगत अंधविश्वास एक जैसा था। अत: संतों ने धार्मिक नफरत की जड़ में स्थित आडंबरों पर कुठाराघात किया। संत दादू ने हिंदू मुसलमान के भेद को अस्वीकार करते हुए कहा कि एक ही परमात्मा सारी सृष्टि का रचयिता है। मैं दो ईश्वर में विश्वास नहीं करता हूं। वही एक परमतत्व कीट-पतंग, जल-थल आदि सभी में व्याप्त है। पीर-पैगंबर, देवता-दानव तथा मीर और मानव का भेद भुलाकर एकमात्र उसी का चिंतन करना चाहिए -

'हिंदू तुरक न जानौ दोई'।
सांई सबनिका सोई है रे, और न दूजा देखौ कोई
कीट पतंग सबनि में, जल थल संगति समाना सोई।
पीर पेगंबर देवा दानव, मीर मुलिक जन कौं मोहिं॥'[15]

संत दादू ने दोनों धर्मों के बाह्य विधि-विधानों से भिन्न अलग मार्ग अपनाया। उन्होंने कहा कि हिंदू मंदिर में उपासना करते हैं और मुसलमान मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं। मैं इन दोनों से अलग निरंजन ब्रह्म की साधना में लीन रहता हूं। यह शरीर ही वास्तविक मंदिर और मस्जिद है। परमात्मा को इससे भिन्न कहीं और खोजने की आवश्यकता नहीं -

'दादू हिंदू लागे देहुरा, मुसलमान मसीति।
हम लागे एक अलख सौं, सदा प्रीति॥
दादू यह मसीति यह देहुरा, सतगुरु दिया दिखाई।
भीतर सेवा बंदगी, बाहरि काहें जाई॥'[16]

दादू कबीर पंथ के अनुयायी रहे। अत: कबीर की तरह शब्दों की तलवार से हिंदू-मुसलमान के विवाद पर प्रहार करते हैं। दोनों के संप्रदायगत झगड़ों को झूठा करार देते हुए कहते हैं कि हिंदू और मुसलमान अपनी पंथ श्रेष्ठता के लिए लड़ते हैं, लेकिन उस अलख परमात्मा का पंथ कौन-सा है, उसे जानने का कोई प्रयास नहीं करता है। हिंदू-मुसलमान में भेद कैसा? दोनों की बनावट एक जैसी है, दोनों के हाथ-पैर, आंख-कान एक जैसे हैं तो अंतर कहां है?

'दादू हिंदी मारग कहैं हमारा, तुरूक कहै रह मेरी।
कहा पंथ है कहौ अलख का, तुम तौ ऐसी हेरी॥
दोनों भाई हाथ-पग, दोनों भाई कीन।
दोनों भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान॥'[17]

दादू एक निर्भीक संत थे। जागरूक समाज द्रष्टा थे। उनके उपदेशों में लोक चेतना प्रतिबिंबित होती है। उनकी वाणियों में जातीय सांस्कृतिक चेतना प्रतिध्वनित होती है, जिसमें सभी रुढ़ियों और अंधविश्वासग्रस्त मान्यताओं का तिरस्कार है, भेदभावजन्य सामाजिक रीतियों का खंडन है और कथनी-करनी की एकता का प्रतिपादन है। नित्य नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के बढ़ते प्रभाव में यह शंका होना अपेक्षित है कि क्या आज भी भक्ति साहित्य और संत प्रासंगिक हैं? जहां दैनिक चर्या ही जीवन जीने के मूलभूत संसाधनों को जुटाने से शुरू हो रही है, वहां क्या कबीर, दादू, रज्जब, रविदास आदि जैसे संत और उनकी वाणियां प्रासंगिक

हो सकती हैं ? ऐसे प्रश्नों से टकराते हुए भक्ति साहित्य के महासागर में गोता लगाने पर संत वाणी के रूप में अनेक अनमोल रत्न प्राप्त होते हैं, जो आज भी भटकते समाज को एक दिशा देते हैं। अपने जीवन की जद्दोजहद में लगे आम आदमी का पथ प्रदर्शन करते हैं। इसलिए भक्ति साहित्य न तो कुंठा की उपज है और न निवृत्तिमूलक। स्वकर्म में रत होकर भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इसका विशिष्ट कबीर संदेश, दादू का संदेश तब भी प्रासंगिक था और आज भी प्रासंगिक है। उनका प्रभु संसार से पलायन का उपदेश नहीं देता, अपितु जीवन को संघर्षों से तपाते हुए सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

दादू पंथ की शिष्य सूची बहुत दीर्घ है। दादू की वाणी उस युग में भी प्रासंगिक थी और आज भी प्रासंगिक है। वे एक महान संत थे, जिनके उपदेशों से राजा-रंक सब प्रभावित हुए। दादू की वाणी में वह अक्खड़ता नहीं है, जो कबीर में है। दादूजी पर्यावरण की रक्षा करना चाहते थे। अत: वनस्पति की रक्षा का उपदेश देते थे। वे एक महान संत थे, जिन्होंने अकबर बादशाह से गोहत्या का वध निषिद्ध करा दिया था। वे अभिनंदनीय संत हैं। भारत के समाज को उन्होंने जो मार्ग दिखाया, वह मानवता का मार्ग था। ❑

संदर्भ

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, भाषा, साहित्य और समाज, पृ. 87-88
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चर अध्याय, पृ. 384
3. प्रो. नंद किशोर पांडेय, संत रज्जब, पृ. 90
4. क्षितिमोहन सेन, दादू, पृ. 19
5. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृ. 2020
6. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ. 4
7. वही, पृ. 8
8. दादूदयाल की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, भाग-1, पृ. 19
9. संत सुधासागर, दादूदयाल, खंड-1, पृ. 481
10. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पद 29, पृ. 389
11. दादूदयाल की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, भाग-1, पृ. 155
12. क्षितिमोहीन सेन, संस्कृति संगम, पृ. 41 से 43 तक
13. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ. 274
14. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर पृ. 173
15. दादूदयाल, राग भैरूँ, पद 24 पृ. 496
16. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ. 197
17. संत सुधासागर, दादूदयाल, खंड/1, पृ. 495

2/48 प्रताप नगर, ब्यावर (राजस्थान)
पिन : 305901

आलेख

प्रवासी हिंदी कहानियों में प्रवासी जीवन के विविध आयाम

✍ आनन्द कुमार राय

सारांश :

आज प्रवासी हिंदी कहानियाँ प्रवासी जीवन के संघर्षों, समस्याओं एवं सुख-दु:ख जैसी विविध अभिव्यक्तियों को साहित्य का एक नया आस्वाद बनाकर प्रस्तुत कर रही हैं। भले ही इनकी प्रारंभिक कहानियाँ नॉस्टैल्जिया में डूबी हुई थीं, परंतु आज के प्रवासी कहानीकारों ने प्रवासी जीवन के उन तमाम तकलीफों को भोगकर या भोगते हुए लोगों के यथार्थ, अनुभूत क्षणों को अपनी कहानियों का हिस्सा बनाकर प्रवासी हिंदी कहानियों को हिंदी की मुख्यधारा के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया है।

यह कहानियाँ एक तरफ तो विदेशों में रह रहे भारतीयों के भारतीयता के अतिक्रमण की कहानी हैं तो दूसरी तरफ विदेशों में रहकर भी भारतीय संस्कृति और संस्कारों एवं उसकी विदेशी परिवेश में एडजस्टमेंट (सामंजस्य) और संघर्ष की कहानी हैं। इन कहानियों में प्रथम प्रवासी पीढ़ी से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी हो रहे बदलावों, बन रहे नई मान्यताओं, नई नैतिकताओं, नए मानसिक द्वंद्वों एवं नई विवशताओं की छानबीन बड़ी सहजता और सजगता के साथ किया गया है। इन कहानियों में कहानीकारों ने प्रवासी परिवेश एवं वातावरण में भारत की तमाम समस्याओं का हल तो निकाला है, पर साथ ही पूरी तटस्थता एवं ईमानदारी के साथ इनसे उत्पन्न नई यातनाओं को भी रखा है।

परिणामत: प्रवासी हिंदी कहानियों में नए भाव-बोधों, नए रचना-संघर्षों से उद्भुत नई अभिव्यक्तियों, नई चेतना एवं नई संभावनाओं से हिंदी साहित्य के पाठकों को समृद्ध होने का अवसर प्राप्त हुआ है।

मूल शब्द : प्रवासी हिंदी कहानी, नॉस्टैल्जिया, अकेलापन, मृत्युबोध, कुंठा, नारी की समस्या, नस्लभेद।

प्रस्तावना :

आज प्रवासी हिंदी साहित्य विश्व के विशाल पटल पर अपनी पहचान स्थापित करने में सफल हो रहा है। यह गिरमिटिया देशों यथा मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद आदि व पश्चिमी देशों अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, डेनमार्क, पोलैंड, ऑस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों तथा खाड़ी देशों यू.ए.ई., कुवैत आदि देशों तक फैला हुआ है, जिसमें जहां व्यक्ति के प्रवासी जीवन की उठापटक, उसके संघर्ष, सुख-दु:ख, उसके समाज, संस्कृति एवं वातावरण में ढलने की कोशिशों की सफलता-असफलता की कहानी का एक नया संसार बसा हुआ है।

प्रवासी लेखन को उसके तीन स्तरों में बँटा हुआ देखा जा सकता है। प्रथम तो वे जो भारत छोड़कर गए और भारत के मीठे अतीत की स्मृतियों को अपनी कहानियों में व्यक्त किया। माँ-बाप, परिवार, मित्र, गाँव, खेत, भारतीय संस्कृति-संस्कार आदि उसे अपनी तरफ खींचते रहे। प्रवासी देश में रहते हुए भी उसका मन अपने देश में लगा रहा। इसके बाद दूसरे वे हैं, जो इन सबसे कुछ ऊपर उठ चुके हैं और जिस देश में रहकर उसे जितना समझ रहे हैं उसे अपनी कहानियों के माध्यम से बताने की कोशिश कर रहे हैं। बाकी तीसरे वे हैं, जो उस देश को अपना समझ कर लिख रहे हैं।

इस तरह प्रवासी लेखन का यह पहला स्तर नॉस्टैल्जिया या पराएपन की अनुभूति इनकी रचनात्मक यात्रा का पहला चरण है। इसके बाद वहाँ पनप रहे नए ढंग की मन:स्तिथियों से संघर्ष और इन सबसे निकल जाने के बाद वहाँ अपनी नई पहचान बनाने की जद्दोजहद को प्रवासी हिंदी कहानियों की उत्तरोत्तर परिपक्वता के रूप में देखा जा सकता है।

ये कथाएँ भारतीय और पाश्चात्य समाज और संस्कृति, परिवेश, भाषा और परंपरा को, मनोविज्ञान और मानवीयता को, संवेदना और वेदना को, मानव-जीवन के सहज और असहज घात-प्रतिघातों को चित्रित कर रही हैं।[1]

इन कहानियों में बिखरी मानसिकता, विखंडित दांपत्य जीवन, अलगावबोध, अकेलापन, घुटन, संत्रास, अजनबीपन, मूल्यह्रास, कुंठा, निराशा, मृत्युबोध आदि जीवन के विभिन्न परिस्थितियों का भी वर्णन मिलता है।

नॉस्टैल्जिया :

प्रवासी हिंदी की आरंभिक कहानियों में नॉस्टैल्जिया के स्वर अत्यधिक सुनाई देते हैं। इसके अलावा ऐसे प्रवासी कहानीकार, जिन्होंने प्रवास के दौरान अपनी कहानी लेखन का आरंभ किया उनकी भी कहानियाँ अतीत की सुखद यादों और रुमानियत से भरी हुई हैं।

वैसे भी नॉस्टैल्जिया प्रवासी साहित्य का पीछा आगे भी नहीं छोड़ने वाली है, क्योंकि नॉस्टैल्जिया एक खास प्रकार की अनुभूति है, जो प्रवासी साहित्य में तड़का का काम करती है। यह कहानियों के प्लॉट को जहाँ विस्तार देती है, वहीं प्रवासी व्यक्ति के जड़ों की भी तलाश करती है। यह नॉस्टैल्जिया प्रवासी साहित्य में दो भिन्न देशों की संस्कृतियों, संस्कारों, परिवेश, परिस्थितियों, मूल्यों, नैतिकताओं और अस्तित्व आदि का तुलनात्मक मूल्यांकन करता है।

एक वक्त था जब नॉस्टैल्जिया में डूबे कहानीकारों के विलाप को लेकर प्रवासी साहित्य को दोयम दर्जे का साहित्य कहा गया था। इसे हिंदुत्ववादी, नॉस्टैल्जिक और अधकचरा तक भी कहा गया था। लेकिन सत्य यही है कि भारत से दूर गए व्यक्ति की पहचान भारतीय है और अपने देश व माटी से दूर रहकर उसकी याद आना स्वाभाविक है। इस स्वभाव की अभिव्यक्ति प्रवासी हिंदी साहित्य को विशिष्ट बनाती है।

अपने नॉस्टैल्जिक स्वभाव के कारण ही प्रवासी साहित्यकार भारतीय पाठकों से जुड़ पाता है और ठीक उसी तरह भारतीय पाठक भी। अन्यथा उस देश की संस्कृति, संस्कार, सभ्यता आदि को जानने मात्र के लिए तो वहाँ के मूल निवासी लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ी जा सकती हैं। इस प्रकार मेरे विचार से प्रवासी हिंदी साहित्य को नॉस्टैल्जिया से अलग करके देखना या इससे दूर रहने की हिमायत करना एक बड़ी गलती होगी।

अपने देश के धर्म, संस्कृति, संस्कार आदि को छोड़ पाना पहली मर्तबा किसी भी प्रवासी व्यक्ति के लिए कठिन होता है। जो कुछ उसने जन्म से प्राप्त किया है उसे त्यागने के लिए वह कोई योजना नहीं बनाता, बल्कि पराए देश में वहाँ की मान्यताओं एवं परंपराओं, संस्कृतियों और संस्कारों, मूल्यों एवं नैतिकताओं आदि से घुलते-मिलते उनकी अपनी इन्हीं चीजों में परिवर्तन जरूर होता है। जो कभी-कभी किसी को अपने देश की संस्कृति और संस्कारों आदि का विरोधी बना देता है तो कभी ऐसा ना होने की स्थिति में एक सांस्कृतिक टकराव खड़ा कर देता है। कभी प्रवासी व्यक्ति वहाँ के बाजारवाद और भौतिकता में खुद को इतना डुबो चुके होते हैं कि उनके लिए भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन आदि सभी मात्र टाइम-पास और ज्ञान-प्रदर्शन के साधन मात्र बनकर रह जाते हैं।

सुषम बेदी की कहानी 'अवसान' दिवाकर और शंकर के बीच हिंदू-धर्म-ग्रंथों के श्लोकों पर आधारित ज्ञानपरक बातचीत की ऐसी ही कहानी है। ''यह सब बौद्धिक प्रयास ही था। किसी आस्था का सबूत नहीं। बस अजीब बात यह थी कि खुद को नास्तिक कहकर भी उनके शब्दावली, संदर्भ सभी हिंदू शास्त्रों से ही जुड़े थे। और यह सब अनायास होता था।''[2]

सुदर्शन प्रियदर्शनी की कहानी 'अखबारवाला' दो संस्कृतियों, संस्कारों, भावना एवं आत्मीयता की एक ऐसी कहानी है, जिसमें उपस्थित नॉस्टैल्जिया मृत्यु-संबंधी गहन भावों की तुलनात्मक पड़ताल करती है। इनकी एक कहानी 'देशांतर' भी अतीत के उन क्षणों की झाँकी प्रस्तुत करती है, जिस पर चढ़कर दोनों पति-पत्नी

का भविष्य आज पीढ़ीगत अंतर के उस किनारे पर खड़ा है, जिस पर चलते हुए प्रवासी देश के संस्कारों व रीति-रिवाजों में हँसी-खुशी शरीक होते हुए उन्होंने यह कभी नहीं सोचा था कि उनका बेटा उन्हें हाशिए पर छोड़ देगा।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कौन-सी जमीन अपनी' में मनजीत भी अतीत की ''सुखद कल्पनाओं और भारत लौटने की चाह में दिन गिन रहा था।''[3] पूर्णिमा वर्मन की 'जड़ों से उखड़े' की नेहा को दुबई आए अभी तीन घंटे ही हुए हैं। वह बार-बार अपने उस अतीत में चली जाती है, जिसे अभी कुछ ही समय पहले वह भारत छोड़ कर आई थी। वह यहाँ की छोटी-मोटी चीजों में चाहे वो झाड़ू हो या मैगी, फिनायल, साबुन इत्यादि सभी में भारत ढूँढ़ने की कोशिश करती है। वह एक ही पल सहारनपुर में होती है तो अगले पल खुद को शारजहां में पाती है।

अकेलापन, परायापन एवं अजनबीपन :

अतीत की यादें प्रवासी व्यक्ति के मन को विचलित कर देती हैं। एक ओर जहाँ वह अपने अतीत के प्रति व्याकुल हो जाता है, वहाँ पहुँचने के लिए आतुर रहता है। वहीं दूसरी ओर उसे यह भी याद रहता है कि उसने भारत किस विवशता में छोड़ा था। फलत: प्रवासी जीवन उसकी मजबूरियाँ बन जाता है। उसके मन में द्वंद्व की स्थिति बढ़ती जाती है। वह स्वयं में सिमटता चला जाता है। ''इस तरह परायेपन, अजनबीपन तथा संबंधों की नि:सारता से पीड़ित प्रवासी भारतीयों का अंतर्मन अपनत्व की खोज में दिग्भ्रमित रहता है।''[4] इन सबसे वह अकेला पड़ जाता है।

अकेलेपन को बयाँ करती कहानियों में 'आग में गर्मी कम क्यों है', जिसमें साक्षी अपने पति की समलैंगिकता को जानकर अपने साथ हुए धोखे से अत्यधिक आहत है। धीरे-धीरे उसके अंतर्मन में चल रहा यह अंतर्द्वंद उसे अकेलेपन का शिकार बना देता है। इसी तरह अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'घर' में सलीम भी अकेलेपन से ग्रस्त है। इस अकेलेपन ने उसे बाहरी दुनिया से अजनबी बना दिया था। अब उसका आशियाना यानी कि घर चिड़ियाघर बन चुका था, जिसमें उसके बचपन को छीनने वाले, बाल्यमन को रौंदने वाले, उसकी परवाह किए बगैर अपनी-अपनी दुनिया में अकेले जीने वालों से वह बहुत दूर, अकेला और अजनबी बन चुका था।

अजनबियत और अकेलेपन की तरह प्रवासी देश में बेगानगी भी एक आम समस्या बन चुकी है। खुद के लोग ही अपनों को पराया और बेगाना बना दे रहे हैं। सोमावीरा की कहानी 'लांड्रोमेट' में निर्मल ने अपने सगे भाई को पमेला से शादी के बाद बिल्कुल पराया कर दिया। क्योंकि ''अमेरिकी लड़की शादी के बाद पति के भाई को अपने घर में बसाना पसंद नहीं करेगी।''[5]

बेगानापन :

इस बेगानेपन के कारण ही आज प्रवासी व्यक्ति पश्चिमी समाज के हाशिए पर है। इस बेगानेपन का आधार अँग्रेजों की नस्लवादी एवं रंगभेदी नीति है-जिसमें खुद को वे भारतीयों से उच्च, सुसंस्कृत, उत्तर-आधुनिक, उन्मुक्त और स्वतंत्र विचारों के ग्राहक मानते हैं। बेगानगी के इस एहसास का भारतीयों को शिक्षा, नौकरी, जीवनशैली, धर्म आदि सभी में सामना करना व सहना पड़ता है। सुषम बेदी की कहानी 'पार्क' में मनु और बिल के बीच युद्ध को लेकर चल रही चर्चा जल्द ही उनके विवाद का कारण बन जाती है। एक ही झटके में बिल के द्वारा मनु इस देश के लिए पराया और बेगाना घोषित कर दिया जाता है।

मूलत: बेगानगी का एहसास एक मानवीय मानसिकता है, जो प्रवासी व्यक्ति के लिए प्रवासी देश की विपरीत परिस्थितियों, वहाँ के समाज, संस्कृति, संस्कार एवं रीतियों की अनुकूलता के कारण उत्पन्न होता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने आसपास से टूट जाता है। इधर-उधर भटकन, उदासी, कुंठा और निराशा ही उसका जीवन हो जाता है।

कुंठा :

कुंठा उम्र के किसी भी पड़ाव में हो सकता है। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'घर' में सलीम के बालमन पर उसके माँ-बाप का संबंध-विच्छेदन और फिर उसकी अनदेखी उस पर इतना गहरा प्रभाव डालती है कि वह कुंठित हो जाता है। इसी तरह बुजुर्गों में भी उनका अकेलापन, निर्वासन और अपनों से मिलता अजनबियत का भाव उनके जीवन के शेष को कुंठा से भर देता है। कुंठाग्रस्त व्यक्ति को जीवन नीरस और बेकार लगने लगता है।

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'अपराधबोध का प्रेत' नरेन और सुरभि की कुंठाग्रस्तता की कहानी है। व्यक्ति को उसके सपनों, आशाओं, उद्देश्यों और अपने लक्ष्य तक पहुँचने से पहले ही भरभराकर टूटती और अपने आँखों के सामने ही बिखरती उसकी सारी कोशिशें उसे कुंठाग्रस्त कर देती हैं। तेजेंद्र की एक और कहानी 'पासपोर्ट के रंग' में गोपालदास का भारत के प्रति लगाव, भारत की नागरिकता पाने की उसकी बार-बार की कोशिशों में मिलती असफलता, भारतीय राजनीति के प्रति उसके बनते-बिगड़ते विश्वासों और उसके सपनों में जड़-सी गई उसकी खुशी अपने वजूद को तलाशते-तलाशते इतनी थक-सी गई थी कि वह भी अब निराशाओं और कुंठित मानसिकताओं से घिर गया था।

रिश्तों में बढ़ती संवेदनहीनता :

प्रवासी जीवन व्यक्ति को इतना व्यस्त, अंतर्मुखी और इतना स्वार्थी बनाता चला जा रहा है कि उसे रिश्ते-नाते, दोस्त और समाज बोझ-से लगते हैं। वह इस बनावटी-से लबादे को भरसक चोथता रहता है।

भारतीय संस्कृति, संस्कार, आचरण, मर्यादा कि वह परत, जो उसके जन्म से लेकर जवानी तक दिन-ब-दिन उस पर चढ़ती-चढ़ती एक ऐसी मोटी खोल बना लेती है कि एक तरफ तो वह भारत में रहते हुए उस विवशता में जीता रहता है, जहाँ वह यही सोचता है कि हम यदि रिश्ते-नाते, दोस्त-यार और समाज के बीच हैं तो उससे भाग कर वह जाएगा कहाँ? निभाना तो पड़ेगा ही। पर दूसरी तरफ वही व्यक्ति जब ऐसे प्रवासी समाज का हिस्सा बनता है, जिसके लोग पहले ही इन सब से खुद को मुक्त कर चुके होते हैं तो उसका हिस्सा बनते ही प्रवासी भारतीय भी अपना रंग बदल लेता है। प्रवासी भारतीय का यह पलायन उनके सभी रिश्तो में एक सूनापन भर देता है। यह सूनापन, संवेदनहीनता, पति-पत्नी, माँ-बाप और बच्चों के बीच, सास-बहू, भाई-बहन, सगे रिश्तों आदि के बीच तो है ही, साथ ही समाज में भी पास-पड़ोस, जान-पहचान आदि हर जगह व्याप्त है।

महेंद्र दवेसर 'दीपक' की कहानी 'सोना लाने पी गए' में शमीम पति के जेल से बाहर आने पर अपने सपनों के टूटने और आजादी की खत्म होने की संभावना से दुखी है। जकिया जुबेरी की कहानी 'मन की सांकल' पुत्र समीर का अपनी माँ सीमा के प्रति गोरी मेम नीरा को लेकर संवेदनहीन व्यवहार का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। उसका अपनी माँ को छिनाल तक कहना, उसे दरवाजे के भीतर धकिया देना सीमा के सारे गरूर को तोड़ दिया था। जिसे उसने उस समय धारण किया था, जब समीर के जन्म के समय उसका टेल-बोन खराब हो गया था। समीर को मारते उसके बाप की दो चार चप्पलें अपनी ममतामयी आगोश में समीर को छुपाते वक्त पड़ जाती थीं।

आज पाश्चात्य जीवन भोगवादी, अवसरवादी, बाजारवादी, वैज्ञानिक, तटस्थ और इतना तीव्र हो गया है कि व्यक्ति वहाँ इन सबके पीछे भागते हुए अपनों को कहीं दूर पीछे छोड़ चुका है। सपनों के पीछे उसकी अंधी दौड़ ने उसको अंधा-सा बना दिया है।

प्रवासी हिंदी साहित्य की लगभग हर कहानी संबंधों और संवेदनाओं की उस दलदल भूमि पर लिखी जा रही है, जिसमें उसके सभी पात्र उसमें धँसते जा रहे हैं, जो उनकी नियति है और विवशता भी है, क्योंकि यूरोप का विकास अतीत की कब्रों पर दीवारें खड़ी करता जा रहा है, जिसमें रहने वाले निवासी-प्रवासी सभी स्वत्व को खोकर नवाचारों में फँसते चले जा रहे हैं।

मृत्युबोध :

प्रवासी हिंदी कहानियों में मृत्यु संबंधी गहन भावों की भी काफी जाँच-पड़ताल की गई है। मृत्यु को केंद्र में रखकर पाश्चात्य जीवन के अकेलेपन, अजनबीपन, स्वार्थ और अवसरवादिता एवं संवेदनहीनता जैसे विभिन्न भावों एवं समस्याओं को दिखाने का प्रयास किया गया है। सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अखबारवाला' मृत्यु के संदर्भ पर सभ्यतापरक पड़ताल करती है। अपनों के बीच से अपना खोने पर भी संवेदनहीनता, अपरिचय, बनावट उस मूल सत्य की चूलें हिला देती हैं, जिसने उनके वर्तमान अस्तित्व को गढ़ा है।

पूर्णिमा वर्मन की कहानी 'नमस्ते कॉर्निश' पराए देश में जिंदगी और मौत का सवाल खड़ा करती है। एक ऐसी जिंदगी जो अपने चारों ओर अकेलेपन और अजनबियत से घिरी है, जहाँ लोग एक-दूसरे को हाथ हिलाकर अपरिचित-सा अभिवादन करते हैं। झूठी मुस्कान के

प्रत्युत्तर में वही झूठी मुस्कान का आडंबर दिखाते हैं। पर इस झूठ में भी लोगों के झूठे नामों से भी आत्मीयता कभी-कभी इतनी गहरी हो जाती है कि कल्पितनामा हसमत अंकल के पिछले दस दिनों से कॉर्निश पर ना आना योगिनी महाजन को विक्षुब्ध कर देता है।

मृत्यु एक ऐसी भयावह और निष्ठुर सत्य है जो प्यार, रिश्तों, भावनाओं आदि सबको जब एक झटके में निगल जाता है, तब एहसास होता है कि हम क्या इसी दिन के लिए और इसी के लिए जी रहे थे।

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'ढिबरी टाइट' प्रवासी देश में भाषा की समस्या, अकेलेपन, व्यस्तता और अत्यधिक कमाने की लालसाओं के बीच गुरमीत द्वारा अपने पत्नी और बच्चों को खोने की दारुण कहानी है।

प्रवासी जीवन जहाँ एक तरफ पैसों की बड़ी-बड़ी गठरियों से जीवन भर तो देता है, वहीं उसी के बोझ तले एक ऐसी बेबसी और घुटन भी देता है, जिसके तले व्यक्ति मरता भी रहता है और उससे निकल भी नहीं पाता।

तेजेंद्र की ही एक अन्य कहानी 'देह की कीमत' मृत्यु की गहरी पीड़ा के पीछे इंसान के स्वार्थी, लालची और मूल्यहीन मानसिकता की उस विद्रूपता को भी सामने रखती है, जिसमें अर्थ की स्वार्थपरक महत्ता बेटे और भाई की मृत्यु को ही अर्थहीन कर देती है। यह समझ में नहीं आता कि तीन लाख का वह ड्राफ्ट माँ के दूध का बकाया था या पम्मी के पति हरदीप की देह की कीमत या उसकी हरदीप के साथ बिताए पाँच महीनों की कीमत। ऊपर से दोनों भाइयों की संवेदनहीनता जो चाहते थे कि इस पैसे का भी बँटवारा हो, जिसे हरदीप के लाश ने इंसानियत के नाम पर बटोरा था।

इसी तरह तेजेंद्र की 'काला सागर', 'कैंसर' और 'कब्र का मुनाफा' जैसी कहानियाँ भी मृत्युबोध को केंद्र में रखकर लिखी गई हैं।

प्रवासी हिंदी कहानियों की यह मृत्यु कोई चेहरा नहीं, बल्कि एक ऐसा आईना है, जिसमें हर चेहरे, हर संबंध की सच्चाई सामने आ जाती है।

प्रवासी जीवन को अभिव्यक्त करतीं इन कहानियों का स्वरूप व्यक्तिगत समस्याओं तक ही सीमित नहीं है, अपितु इन सबसे आगे बढ़कर प्रवासी हिंदी साहित्यकारों ने बृहद स्तर पर वहाँ के समाज और सामाजिक ढाँचों और उसमें पिसती-घुटती मानवीय मूल्यों व इन सबसे उद्भुत विभिन्न सामाजिक समस्याओं का अंकन भी बड़ी गंभीरता से किया है।

प्रवासी हिंदी कहानियों में नारी :

प्रवासी हिंदी साहित्य जगत में नारी-लेखन उनसे जुड़ी समस्याओं, अनुभूतियों, अस्मिता और अस्तित्व के संघर्षों की कहानियों को प्रवासी जीवन के यथार्थ अवलोकन एवं अपनी अनुभूतियों में समेट कर लिखती लेखिकाओं की एक बड़ी संख्या है, जिसने नारी-जीवन, उसकी वेदना एवं संवेदना को, उसके दर्द, पीड़ा एवं विभिन्न मन:स्थितियों को प्रवासी धरातल के नए पृष्ठभूमि पर नए ढंग से गढ़ा है, जो भारत के स्त्री-विमर्श के नाम पर दैहिक विमर्श करती कहानियों से अलग हैं। इनमें उतना खुलापन नहीं है, जितना भारतीय हिंदी कहानियों में नजर आता है।

आज यदि प्रवासी हिंदी साहित्य के महिला कहानीकारों पर एक नजर डालें तो अमेरिका से सुषम बेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद आदि और कनाडा से शैलजा सक्सेना, ब्रिटेन से जकिया जुबेरी, उषा राजे सक्सेना, अचला शर्मा, शैल अग्रवाल, उषा वर्मा आदि प्रवासी हिंदी साहित्य को नए मुकाम तक ले जाने और जीवंत बनाए रखने का स्तुत्य प्रयास कर रही हैं। इसी तरह संयुक्त अरब अमीरात से पूर्णिमा वर्मन, कुवैत से दीपिका जोशी, डेनमार्क से अर्चना पैन्यूली, फ्रांस से सुचिता भट्ट, नीदरलैंड से पुष्पिता अवस्थी आदि कई प्रवासी महिला साहित्यकार भी अपने नई भावभूमियों पर अर्जित नई अनुभूतियों के रचना-संसार को रचकर प्रवासी हिंदी साहित्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने में मार्गदर्शिका का काम कर रही हैं।

इन लेखिकाओं ने प्रवासी जमीन पर नारी-जीवन की उन तमाम बारीक अनुभूतगत सच्चाइयों की परतों को छीला है, जिसने ना जाने कब से नारी को परंपराओं, संस्कृतियों संस्कारों एवं रूढ़ियों व आडंबरों के नाम पर उसकी स्वतंत्रता, समानता और निजता को यातनाओं, सिसकियों और चारों तरफ से घिरी किन्हीं दूसरों की परछाइयों के गहरे काले अंधकार से आच्छादित कर रखा था।

इन लेखिकाओं की महिला-पात्र प्रवासी वातावरण को अपने अनुकूल पाकर विषम से विषम परिस्थितियों

से बड़ी दृढ़ता से बाहर निकल आती हैं। उन सारे बंधनों तक को तोड़ती हैं, जिसने उन्हें परंपरा से कैद कर रखा था। यद्यपि ये महिलाएँ अपने आदर्शों व संस्कारों को यहाँ भी झेलती हैं, पर जरूरत पड़ने पर अपनी सीमाओं को लांघकर पानी से बने पत्थरों के खोल को तोड़ती भी हैं। उन बुनियादों की भी चूलें हिलाती हैं, जिस पर पुरुष-सत्तात्मक समाज ने अपने विभिन्न अधिकारों की इमारतें खड़ी कर दी थीं।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'क्षितिज से परे' एक ऐसी सत्रह साल के सारंगी की कहानी है, जिसमें स्त्री को दोयम दर्जे का समझने वाले पुरुष-समाज के प्रति एक ऐसे मौन विद्रोह को दिखाया गया है, जहाँ न कोई शोर-शराबा है और ना ही नारेबाजी। अमेरिका के एयरपोर्ट पर उतरते ही सुलभ द्वारा सारंगी को बोला गया 'बेवकूफ' शब्द दीवार पर लगे पोस्टर की तरह उससे इस तरह से चिपक गया था, जो अगले चालीस सालों तक उसके अस्तित्व और उसके परिपक्वता के आगे प्रश्नचिन्ह बनकर खड़ा रहा।[5] अगर नई जगह पर इनका संघर्ष था तो मेरा भी उतना ही था। हाँ मोर्चे अलग थे। मैंने घर-परिवार संभाला और इन्होंने बाहर। फिर एक बुद्धिमान कहलाए और दूसरा बेवकूफ...क्यों ?[6]

रिटायरमेंट के बाद सुलभ का यह रवैया इतना बदतर हो गया कि सारंगी ने स्वयं को उससे इतना दूर एक ऐसी अलग दुनिया में कर लिया, जहाँ उसकी अपनी व्यस्तताएँ थीं, अपनी योजनाएँ और अपना जीवन था। जिसमें सुलभ का अत्यधिक पढ़े होने का झूठा अहंकार नहीं था। जिसमें सारंगी की पतिप्रदत्त उपाधि 'बेवकूफ' की बेवकूफी नहीं, बल्कि संघर्ष और चुनौतियों के बीच बढ़ती परिपक्वता थी।

इसी तरह सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'धूप' भी रेखा के उस विद्रोह की कहानी है, जिसमें अमेरिकन बन चुके अपने पति विशाल को एक ही झटके में कह देती है कि अब हम साथ नहीं रह सकते। पर यह झटका विशाल के साथ रहते हुए उसने एक लंबे अरसे से भोग रखा था।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'संबंध' प्रवासी परिवेश में स्त्री-पुरुष के संबंधों को नए लकीरों पर लिखने की हिमायत करता है। सर्जन ने कहा था- ''श्यामला मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं घर बार बाल-बच्चे सब तुम्हारे लिए छोड़ सकता हूँ। ... (श्यामला ने) बहुत देर बाद कहा- क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते ? प्रेमी, मित्र, बंधु ! क्या वह सब छोड़ना जरूरी है ? मैं तो कुछ नहीं माँगती।''[7]

प्रवासी हिंदी कहानियों में भारतीय स्त्री-पात्रों के जीवन पर यदि समेकित दृष्टि डालें तो यहाँ कई स्थितियाँ उभरकर आती हैं। एक, 'क्षितिज से परे' और 'धूप' की नायिकाओं की तरह जहाँ स्त्री बोझिल संस्कार, बरबस पति से मिलती उलाहनाओं, प्रताड़नाओं के विरुद्ध अपने लंबे दबे विद्रोह का खुला घोष करती है। वहीं दूसरी, 'संबंध' की श्यामला की तरह खुद को किसी से बाँधना नहीं चाहती। तीसरी, इला प्रसाद की कहानी 'खिड़की' की नायिका की तरह जिसके लिए बंद दीवारों का घर क्या पता ईंट का बना था या कि उसके पति के बंधनों से। जिसके बाहर अगर वह झाँक सकती तो अपने अंदर के घुटन, बेबसी, छटपटाहट और अंधकार को दुनिया के संगीत में उतार सकती और उसके रंग में एक नया चित्र उभार सकती। तो चौथी, सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' में अमेरिकी भोगवादी संस्कृति की उपभोक्ता बन चुकी टेरी और उसकी बेटियों की तरह हैं। ''माँ के स्वभाव, रहन-सहन और आदतों का परिणाम यह निकला कि बेटियाँ माँ के ही नक्शे-कदमों पर चलती हुईं रोज पुरुष बदलती हैं और तीन-तीन बच्चों की विवाहिता माँएं बनकर सरकारी भत्ता ले रही हैं।''[8] इसी तरह पुष्पा सक्सेना की 'कोई विकल्प नहीं' और उमेश अग्निहोत्री की 'क्या हम दोस्त नहीं रह सकते' कहानियों में नए मूल्यों की तलाश करती और सुधा ओम ढींगरा की 'बेघर सच' में अपने अस्तित्व, अस्मिता और समता की लड़ाई लड़ती नारी की तरह जैसी नारी की विभिन्न स्थितियों को प्रवासी हिंदी कहानियों का केंद्र-विषय बनाया गया है।

वृद्धों की समस्या :

प्रवासी हिंदी कहानियों में वृद्धों के जीवन पर भी बहुत कुछ लिखा गया है, जहाँ उनके नई पीढ़ी के नए सोच-विचारों से विसंगति का, उनके व्यर्थतापन, अकेलेपन, उपेक्षित और अपमानित दशा का वर्णन किया गया है।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी', तेजेंद्र शर्मा की 'पासपोर्ट के रंग', अनिल प्रभा कुमार की 'वानप्रस्थ', नीना पाल की 'घर-बेघर', जकिया जुबेरी की 'मन का सांकल', सुषम बेदी की 'झाड़', सुधा ओम ढींगरा की 'कमरा नंबर 103' जैसी कई कहानियों में वार्धक्य जीवन की जटिलताओं, विषमताओं एवं अभिशापित दशा का जीवंत एवं मार्मिक चित्रण किया गया है।

पीढ़ीगत अंतर :

पीढ़ीगत अंतर तो लगभग हर देश, समाज, संस्कृति और हर युग में देखने को मिल जाता है। नई पीढ़ी की नई आवश्यकताएँ, नई आकांक्षाएँ और जीने के नए ढंग, पुरानी मान्यताओं, परंपराओं, मूल्यों एवं नैतिकताओं को नए आलोक और नए सिरे से देखने के लिए विवश करते हैं। जबकि पुरानी पीढ़ी अपने ही मूल्यों, आदर्शों और नियमों में जीती है। परिणामत: इन दो पीढ़ियों में मूल्यों, मान्यताओं और संस्कृतियों का स्वाभाविक टकराव होता है।

प्रवासी हिंदी कहानियों में भी इसकी मुखर अभिव्यक्ति हुई है। जकिया जुबेरी की 'मन का सांकल', सुदर्शन प्रियदर्शनी की 'देशांतर', कनाडा के सुमन कुमार घई की 'लाश' जैसी कई अन्य कहानियों में इसकी अभिव्यक्ति हुई है।

नस्लभेद :

प्रवासी हिंदी कहानियों में नस्लवाद के दंश को झेलते भारतीयों की मर्मांतक पीड़ा उसकी असहनीयता को दबाए रखने की बेबसी की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। सुषम बेदी की 'विभक्त', 'एक अधूरी कहानी', 'काला लिबास', 'अजेलिया के रंगीन फूल', 'चट्टान के ऊपर, चट्टान के नीचे' और उषा राजे सक्सेना की कहानी 'मेरा अपराध क्या है', 'अभिशप्त' व उषा वर्मा की 'मंजूर अली', 'रॉनी' आदि कई कहानियों में नस्लवाद की पीड़ा, बेबसी और इनसे उपजी कुंठा, तनाव, निराशा, हताशा जैसी विभिन्न मन:स्थितियों के मन:स्ताप का रेखांकन बड़ी बारीकी से अनुभूत यथार्थ के धरातल पर किया गया है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रवासी हिंदी कहानीकारों ने प्रवासी जीवन के विविध पक्षों एवं उसके विभिन्न आयामों को अपनी कहानियों में अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति दी है। यदि पूरे प्रवासी हिंदी कहानियों को समग्रत: देखें तो वह प्रवासी भारतीय व्यक्ति जो अपने अतीत की यादों में डूबा रहता है और कभी इससे न निकल पाने की स्थिति में खुद को अकेला, अजनबी, पराया, बेगाना, कुंठित और कभी-कभी भयभीत पाता है भी तो कहीं वह प्रवासी व्यक्ति भी है, जो यहाँ की परिस्थितियों, परंपराओं और अनुभवों से जुड़ कर भी अपने देश की संस्कृति, सभ्यता और संस्कार को जीवित रखे हुए है। इसके अलावा वह भी है, जो उस प्रवासी समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे नस्लभेद, रंगभेद आदि के दंश को झेल रहा है तो अन्य वह भी है, जो इस प्रवासी जीवन से पूरी तरह घुल-मिल चुका है। उसके आदर्श, संस्कार और व्यवहार सब कुछ यहीं के हैं। इस तरह प्रवासी हिंदी कहानी अपनी असीम संभावनाओं के साथ प्रवासी जीवन की विविधताओं को हिंदी साहित्य के नए आस्वाद, नई शैली, नए ढंग और नई संवेदनाओं से जोड़ रहा है। ❑

संदर्भ :

1. डॉ. रेनू यादव, प्रवासी कथाओं में स्त्री विमर्श, कथा-आलोचना विशेषांक- प्रवासी कथालोचना (हिंदी चेतना, अक्टूबर-दिसंबर, 2014), पृष्ठ 113
2. सुषम बेदी, अवसान
3. सुधा ओम ढींगरा, कौन सी जमीन अपनी
4. सोनिया राठी, प्रवासी हिंदी कहानी लेखन: एक अध्ययन, शोध-प्रबंध (जैन यूनिवर्सिटी, 2018), पृष्ठ 271
5. सोमावीरा, लांड्रोमट,
6. सुधा ओम ढींगरा, क्षितिज से पर
7. उषा प्रियंवदा, संबंध, कितना बड़ा झूठ (राजकमल प्रकाशन, 2008), पृष्ठ 13
8. सुधा ओम ढींगरा, सूरज क्यों निकलता है

- शोधार्थी, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

विमर्श

समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक चेतना

✍ श्रावणी दास

राजनीति अर्थ, तकनीक, सामाजिक अंत:क्रियाओं और साहित्य को सीधे प्रभावित करती है। साहित्य में राजनीति का चित्रण सीधे तौर पर भी होता है और सामाजिक माध्यम से भी, क्योंकि सीधे तौर पर राजनीति से जुड़े साहित्य को किसी विशेष विचारधारा के प्रचारक साहित्य के रूप में देखा जाता है। इसलिए साहित्यकारों में मुख्य रूप से सामाजिक माध्यम से ही राजनीति के चित्रण की प्रवृत्ति पाई जाती है। राजनीति शब्द का प्रयोग सबसे पहले अरस्तु ने किया था। उनके काल में हर एक नगर स्वायत्तता प्राप्त और स्वतंत्र होता था। इसलिए उसने नगर राज्य को राजनीति माना। राजनीति का संबंध व्यक्ति से है, व्यक्ति का समाज से, समाज का साहित्य से। इस तरह राजनीति का साहित्य से संबंध स्थापित हो जाता है। साहित्य में भी कविता के साथ इसका खास रिश्ता है। कहानी, नाटक, निबंध आदि के बनिस्पत कविता के संदर्भ में राजनीति पर या राजनीति के संदर्भ में कविता पर विभिन्न कालों में होने वाली चर्चाएं और बहस इस बात का स्वयं प्रमाण हैं। कविता संवेदना और भावना की उपज मानी जाती है। इसलिए किसी अन्य विधा की अपेक्षा वह अधिक बारीकी से समाज पर पड़ने वाले किसी छोटे या बड़े प्रभाव को रेखांकित करती है।

रोहिताश्व के अनुसार, ''समकालीन कविता प्रगतिशील रुझानों में जनवादी पक्षधरता के साथ माननीय सौंदर्यबोध में, सृजनात्मक चेतना के रूपांतरण की कविता है। जो अपने दौड़ की काव्य सृजन में विगत लगभग दो दशकों के ऐतिहासिक कालखंड में विकसित प्रगति विरोधी-प्रतिक्रियावादी कलाअतियों का निषेध करती हुई माननीय रागात्मकता की समग्रता एवं वर्गहीन समाज की आस्थाशील कविता है।''[1]

हिंदी कविता के इतिहास पर नजर डालने के बाद हम यह पाते हैं कि राजनीतिक कविता लगभग प्रत्येक दौर में लिखी गई है, परंतु विषयों के महत्व अथवा प्राथमिकता के कारण राजनीतिक विषय कहीं मुख्य और कही गौण अवश्य रहे हैं। समकालीन कवियों के बारे में यह बात कहना मुश्किल है कि सभी ने राजनीतिक विधाएं लिखी हैं, परंतु यह बात निशंक भाव से कही जा सकती है कि राजनीतिक जागरूकता लगभग सभी कविताओं में है। 'समकालीन कविता के विस्तृत परिवेश में भारतीय जीवन संघर्ष को, राजनैतिक अस्थिरता को, नेताओं के भ्रष्टाचार को एवं खोखले वादों की नाटकीयता को ही उजागर नहीं किया गया है, बल्कि तीसरी दुनिया के शासक-शोषक द्वंद्वों के संघर्ष में, मानवीय मुक्ति संघर्ष में पक्षधरता में विचारा गया है।'[2] कवि द्वारा राजनीति के कारण या उसकी सहयोगी संस्थाओं के माध्यम से समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को कविता का विषय बनाना वास्तव में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति को कविता का विषय बनाना ही है, लेकिन सही और सधे हुए ढंग से राजनीति को रचना में लाने के लिए आवश्यक है कि वैचारिक

धरातल पर चीजों और स्थितियों की जांच-पड़ताल हो। भारत में आपात स्थिति हो या किसी सत्ता के परिवर्तन का शंखनाद, कोई समझौता हो या संधि, नेताओं की निरर्थक घोषणाएं हों या कुमार्गी नेतृत्व लगभग प्रत्येक घटना स्थिति, ब्योरे, प्रभाव और परिवर्तन को समकालीन कवि ने किसी-न-किसी प्रकार से दर्ज किया है।

भारत में स्वतंत्र और स्वदेशी राजनीति का वास्तविक इतिहास भारत को आजादी मिलने के बाद ही आरंभ हुआ, क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के कारण आम जनता पहली बार राजनीति से सीधे तौर पर जुड़ी थी। इसलिए माना जा सकता है कि स्वदेशी राजनीति का विकास और जनता से राजनीति का सीधा जुड़ाव स्वतंत्रता के बाद ही हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पंद्रह-बीस साल बाद भी जब जनता ने देश की राजनीति और शासकों के नेतृत्व में यथास्थिति पाई तो स्वदेशी राजनीति और शासकों के प्रति एक प्रकार से उनका मोहभंग हो गया। संभवत: इसी कारण सन् सैंतालीस वाला सत्ता परिवर्तन का जोश सन् 77 के आसपास भी नजर आया, जब जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में जनता ने तब्दीली की मांग की और जे.पी. ने 'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान किया। जनता द्वारा नेतृत्व परिवर्तन की मांग का कारण शासकों का जनता की उम्मीदों पर खरा न उतरना था। देश के लगभग हर एक कोने में आंदोलन ने जन्म लिया और बढ़ता हुआ केंद्र में सत्तासीन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के द्वार तक आ पहुंचा। यहां तक कि संसद भवन के सामने धरने और रैलियां होने लगीं।

शान्ति की दुकान

मुहल्ले में वह शान्ति बेचता है।
लाउडस्पीकरों की
एक दुकान है उसकी
मेरे घर से बिल्कुल लगी हुई।

सुबह सुबह मुँहअँधेरे दो घण्टे
लाउडस्पीकर न बजाने के
वह मुझसे सौ रुपये महीने लेता है।

वह जानता है कि मैं
उन अभागों में से हूँ
जो शान्ति के बिना
जीवित नहीं रह सकते!

वह जानता है कि आनेवाले वक़्तों में
साफ़ पानी और साफ़ हवा से भी ज़्यादा
शान्ति की क़िल्लत रहेगी।

वह जानता है
कि क्रान्ति के ज़माने अब लद चुके :
अब उसे अपना पेट पालने के लिए
शान्ति का धन्धा अपनाना है।

मैं उसका आभारी हूँ।
भारत जैसे देश में
जहां क़ीमतें आसमान छू रहीं
सौ रुपये महीने की दर से
अगर दो घंटा रोज़ भी शान्ति मिल सके
तो महँगी नहीं!

ऐसी स्थिति का समकालीन कवि ने विशेष ध्यान दिया। कवियों ने विभिन्न प्रकार से इस परिस्थिति को मुखरित करने वाली कविताएं लिखीं। अधिकांश कविताएं स्वातंत्र्योत्तर काल से विकसित मोहभंग की स्थिति से जुड़ी हुई है। धीरे-धीरे कविता का सृजन इसी मोहभंग की भूमिका पर हुआ है-

'मेरे देस्तो
उस देश का क्या करूं
जो धीरे-धीरे खाली होता जा रहा है
मेरे देस्तो
धीरे-धीरे कुछ नहीं होता
सिर्फ मौत होती है।
धीरे-धीरे एक क्रांति-यात्रा
शव-यात्रा में बदल रही है।[5]

नि:स्संदेह इसका कारण था शासक वर्ग का जनता की उम्मीदों पर खरा न उतरना, जिसे एक मायने में शासक वर्ग की निष्क्रियता भी कही जा सकती है। जब से देश आजाद हुआ था, तब से लगातार एक ही राजनीतिक पार्टी अर्थात कांग्रेस को राज करते तकरीबन बीस वर्ष हो गए थे। इन बीस वर्षों में उन्नति के नाम पर भारत की यदि कुछ प्राप्ति थी तो वह थी फाइलों में बंद बड़े-बड़े उद्योगों की रूपरेखाएं, वादों का रेशमी भ्रमजाल, गरीबों और बेरेजगारों की बढ़ती हुई फौज। आम आदमी की तरह समकालीन कवि को भी इस बात की जानकारी और अहसास था। सन् 1962 में भारत-चीन के बीच लड़ाई, कांग्रेस की हार आदि अनेक घटनाएं हुईं। इन विसंगतियों और मोहभंग का असर साहित्य में भी हुआ, जिसके फलस्वरूप अनेक वादों यथा-अकविता, अस्तित्ववादी कविता, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता, विद्रोही कविता, नव-प्रगतिशील

कविता, आज की कविता आदि का जन्म हुआ और कुंठा, संत्रास जैसे मूल्यों की रचनाएं आईं। वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे दायित्वशील रचनाकार भी थे, जो कविता की समकालीन सफलता को समझते हुए अपनी रचनाओं में जनजीवन के संघर्ष और मानवीय संवेदना को व्याख्यायित कर रहे थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी देश को आर्थिक स्वतंत्रता के लिए अनेक योजनाओं एवं साधनों के विकास का मार्ग निर्मित करना पड़ा, क्योंकि विकास ही पूर्ण आजादी का परिचायक है।

महायुद्धों की विकरालता से राष्ट्र के आर्थिक विकास में बाधा आई। राष्ट्र-विभाजन, पाक युद्ध, चीन युद्ध, शरणार्थी समस्या, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेकारी, महंगाई, प्रकृति-प्रकोप इत्यादि से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जर्जर हो गई। साम्राज्यवादी शासन ने वर्ग-भेद की खाई पैदा कर दी, जिससे खीझ, त्रास, क्षोभ, निराशा एवं अकुलाहट ने भारतीय समाज को हिला दिया। अपनी दीर्घकालीन पराधीनता और विश्वव्यापी युद्ध तथा उसके परिणामों ने अनेक समस्याएं पैदा कर दीं। यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व ही 'राष्ट्रीय योजना समिति' द्वारा अर्थव्यवस्था के बदलाव पर अधिक बल दिया गया। तथापि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस उद्देश्य के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। मार्च, 1950 में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना आयोग' का गठन हुआ तथा इसी वर्ष प्रथम पंचवर्षीय योजना को भी लागू किया गया। इस योजना का लक्ष्य कृषि, उद्योग, सिंचाई, बिजली, परिवहन, शिक्षा एवं यातायात के साधनों की विकासात्मक रूपरेखा तैयार करनी थी, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो तथा सामाजिक वैषम्य दूर हो सके। देश की आत्मनिर्भरता के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक साधन सुलभ करवाए, लेकिन तब भी विकराल समस्याओं ने साथ नहीं छोड़ा। पांचवीं पंचवर्षीय योजन तक आते-आते ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा।

सन् 1948 में भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की घोषणा की गई। ज्ञान-विज्ञान की बढ़ोतरी से भारतीय अर्थव्यवस्था वैज्ञानिक होती गई। मनुष्य ने वैज्ञानिक परिवेश में भौतिक, रसायन, जीवन विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक्स, साइबरनोटिक, रॉकेट विज्ञान आदि को लेकर विशेष प्रगति की है। कृषि एवं उद्योगों का रुख वैज्ञानिक एवं तकनीकी हो गया है। अनेक प्रकार की रासायनिक खाद, टैंक, हवाई जहाज, रेलवे, जलयान, लोहा-इस्पात का सामान, आणविक पदार्थ, टेलीफोन, टेलीविजन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, चिकित्सा क्षेत्र इत्यादि में पर्याप्त उत्पादन ने जनतांत्रिक भारत को आत्मनिर्भर होने में सक्रिय भूमिका निभाई। औद्योगिक विकास से व्यक्ति के जीवन स्तर में बदलाव आया तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि भी हुई। औद्योगिक विकास एवं हरित-क्रांति ने राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया।

कृषि क्षेत्र में विकास तो हुआ, परंतु जनसंख्या वृद्धि के कारण पंचवर्षीय योजनाओं के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए हैं और इस परिवर्तन से ग्रामीण समाज भी अछूता नहीं रहा है। कृषि के औद्योगिकीकरण से समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। परिणामस्वरूप उत्पादन से संसाधनों और प्रणाली में जो परिवर्तन आते हैं, उससे समाज और व्यक्ति दोनों ही प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि ग्रामीण जाति में भी व्यक्ति की मानसिकता और चेतना बदली। आजादी से पहले सामंतवादी व्यवस्था में गांव की भूमि पर जमींदारों का वर्चस्व था और किसान को अपनी जीविका चलाने के लिए लगान पर भूमि प्रदान करता था। इस समाज में दूसरा एवं सबसे बड़ा वर्ग किसान एवं मजदूर का है। यह वर्ग भारतीय ग्रामीण समाज एवं अर्थव्यवस्था का आधारभूत वर्ग है। ग्रामीण समाज में किसान, मजदूर, शिल्पी और कर्मी वर्ग सर्वाधिक महत्व रखते हुए भी सदियों

से उपेक्षित और पीड़ित रहे हैं। इसका मूल कारण है जमीन और अर्थव्यवस्था में उनका वर्चस्व न होना। समूची अर्थव्यवस्था में जमींदार एवं धनी वर्ग सदियों से भारतीय किसान, मजदूर की जमीन के आधार पर उनका शोषण करता चला आया है। भारतीय ग्रामीण समाज में नारी की स्थिति भी बहुत अधिक शोषित रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय ग्रामीण परिवेश में बहुआयामी परिवर्तन हुए हैं, फिर भी गांव के किसान, मजदूर, दलिता पीड़ित वर्ग की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया।

सन् 1947 में भारत को आजादी मिली और सन् 1950 में भारत को एक गणतांत्रिक देश घोषित किया गया। भारतीय इतिहास में 15 अगस्त, 1947 की घटना एक अविस्मरणीय घटना है। अंग्रेजों की गुलामी से देश को मुक्त कराने के लिए देशभक्तों को अपनी जान की कुर्बानी देनी पड़ी। अनेक देशभक्त शहीद हुए तथा अंग्रेजों का पाशविक तथा अमानवीय व्यवहार जनता को सहने पड़े। भारत में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की नींव पड़ी। साथ ही राजतंत्र को समाप्त करके जनतंत्र की स्थापना की गई।

हम यह कह सकते हैं कि समकालीन कवियों ने लगभग प्रत्येक राजनीतिक घटना या स्थिति के प्रति विचारवान और विवेकपूर्ण दृष्टि रखी है। हालांकि समकालीन कवियों का ऐसा कोई विशेष वर्ग नहीं है, जिन्होंने राजनीतिक विषयों को विशेष महत्व दिया हो, परंतु फिर भी बहुत से कवि ऐसे हैं, जिन्होंने अन्य कवियों की अपेक्षा राजनीतिक जागरूकता का अहसास अधिक दिखाया है। समकालीन कवियों ने केवल राजनीतिक हलचलों पर ही चिंतन-मनन नहीं किया, बल्कि हमारे देश की लोकतांत्रिक संरचना एवं स्वरूप को लेकर भी विवेकपूर्ण कविताओं की रचना की है।

भारतीय जनता के लंबे संघर्ष के पश्चात देश स्वतंत्र तो हुआ, किंतु उसके पश्चात ही देश के विभाजन का मूल्य भी चुकाना पड़ा। हजारों निर्दोष लोगों को प्राणों की आहुति देनी पड़ी और लाखों लोगों को बेघर होना पड़ा। सन् 1947 में भारत का विभाजन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप पूरा देश सांप्रदायिकता की आग में जलने लगा।

भारतीय जनता को दंगों, हत्या, बलात्कार आदि वीभत्स एवं अमानवीय कृत्यों का सामना करना पड़ा। सांप्रदायिकतावाद की भीषण अग्नि में जनता पर अमानवीय अत्याचार किए। लाखों परिवारों को पलायन करना पड़ा। पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों को फिर से बसाने के लिए भारत सरकार को अपनी पूरी शक्ति तथा साधन लगा देने पड़े।

गांधी जी को इस भड़कती सांप्रदायिकता की आग को बुझाने के लिए अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। गांधीजी का व्यक्तित्व इतना महान था कि उन्होंने हिंसा के मार्ग पर न चलकर प्रेम तथा अहिंसा के मार्ग पर चलकर देश को स्वतंत्रता दिलाई थी। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए गांधी जी ने बहुत प्रयत्न किए।

देश के विभाजन और सांप्रदायिकात से भड़की आग ने अराजकता और अनुशासनहीनता के रूप में हमारे सामने ऐसी भीषण परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं, जिससे हमें अपना अस्तित्व पुनः खोया हुआ लगा। भारतीयों ने प्रत्येक परिस्थिति का सामना दूरदर्शिता, बुद्धि और विवेक के साथ किया।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने नवीन लोकतांत्रिक परंपराओं के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय राजनीति पर स्वतंत्रता के पूर्व और बाद में भी मुख्यत: कांग्रेस पार्टी का ही वर्चस्व रहा। निजी हितों के कारण हर पूंजीवादी कांग्रेस का समर्थन करता था। धीरे-धीरे प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव होने लगा। स्वतंत्र

भारत के समक्ष अराजनीतिक समस्याएं आईं। शरणार्थियों की समस्या का समाधान करने के बाद देशी राज्यों को समाप्त करने तथा जमींदारी खत्म करने की विकट समस्या थी। अंग्रेजों की हुकूमत तो समाप्त हो गई, लेकिन उन्होंने देशी राजाओं को पूर्ण स्वतंत्र घोषित कर दिया। भारत का एक-तिहाई भाग देशी राजाओं के अधीन था। अंग्रेजों को विश्वास था कि राजा भारत के विरुद्ध विद्रोह करेंगे, लेकिन सैन्य-शक्ति के बलबूते उन्हें समाप्त कर भारतीय संघ में समाहित कर लिया गया। राज्यों का पुन: गठन हुआ। इस प्रकार संपूर्ण देश एकता के सूत्र में एक बार फिर बंध गया।

सन् 1974-75 में राजनीतिक अव्यवस्था भी अपनी चरम बिंदु पर पहुंच गई थी। हर तरफ हिंसा, तोड़फोड़, जुलूम, बंद आदि नागरिकों के जीवन का एक अंग-सा बन गया। चापलूसी, मानव मूल्यों का अंत, प्रेस से उसकी कलम की आवाज बंद करने के आक्रोश ने पुन: भारतीय मानस को गहराई तक हिला दिया। इन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। राजनीति विज्ञान एवं साहित्य के इंद्रजाल में मानव को कहीं का नहीं रहने दिया। अतीत में ऐसी दशा न तो साहित्य की थी और न ही साहित्यकारों की। ऐसी परिस्थिति में रचनाकार भी राष्ट्र को बदलने की चेष्टा में जुट गए।

समकालीन कवियों की लेखनी पर आजादी के मोहभंग का प्रभाव पड़ा। कवि केदारनाथ सिंह अपनी एक प्रिय कविता 'दो मिनट का मौन', जिसे उन्होंने सोवियत संघ में श्रोताओं को सुनाया था, में कहते हैं-

'भाइयो और बहनो
यह दिन डूब रहा है
इस डुबते हुए दिन पर
दो मिनट का मौन।
गिरे हुए छिलके पर
टूटी हुई घास पर
हर योजना पर
हर विकास पर
दो मिनट का मौन'[4]

इस प्रकार कवि ने दो मिनट के माध्यम से पूरी व्यवस्था पर कटाक्ष किया है, जिसमें लयात्मकता तो है, परंतु वह बोझिल व अराजक नहीं है। उनकी कविताएं सपाट बयानी, अखबारबाजी और जुमलेबाजी के बोझ से दबी नहीं हैं, बल्कि उनमें एक सीमावद्ध काव्यानुशासन है, जिसका प्रभाव शब्दों के चयन और सीमित लयबद्धता में लक्षित होता है। प्रत्येक युग, काल अथवा धारा की कविता किसी-न-किसी केंद्रबिंदु पर आधारित रही है। छायावाद के केंद्र में प्रकृति मानी गई, प्रगतिवाद का आधार नारा, प्रयोगवाद का उद्देश्य-कथ्य, शिल्प और शब्द के प्रयोग, नई कविता की दृष्टि मनुष्य के अंत:करण पर रही और साठोतरी कविता को व्यवस्था विरोध की गुस्सैल कविता कहा गया। इसी प्रकार समकालीन कविता ने भी अपने केंद्रबिंदु का निर्धारण किया है। समकालीन कविता के केंद्र में है जन और देश - यह समकालीन कविता की एक विशिष्टता ही कही जाएगी कि जिस समग्रता के साथ इसने समूह समाज पर विचार किया है, उसी संपूर्णता से इसने स्वयं को इकाई जन पर भी एकाग्र किया है। मनुष्य समाज की मूल इकाई है और समाज का निर्माण करता है। इसलिए समकालीन कविता द्वारा मनुष्य अर्थात जन को केंद्रबिंदु बनाया, इस विश्वास को आधार प्रदान करता है कि इसने इकाईजन के माध्यम से बनने वाली अन्य संगठनात्मक रचनाओं को

तो छुआ ही होगा।

साहित्य का मूल लक्ष्य लोकमंगल या परहिताय संकल्पना है। राजनीति को आत्मसात कर वह प्रचारात्मक या उपदेशात्मक रवैया नहीं, बल्कि संतुलित दृष्टिबोध का बोधक सिद्ध होता है। साहित्यकार सांस्कृतिक कार्यकर्ता होता है। यदि राजनीतिक कार्यकर्ता जनता को राजनीतिक चेतना से संपन्न करता है तो सांस्कृतिक कार्यकर्ता उनमें क्रांतिकारी सौंदर्यबोध उभारता है। यदि राजनीति लेखकों की सोच को प्रबुद्ध करने का, अनुभव और चिंतन को अग्रसर करने का दायित्व वहन करती है तो साहित्यिक सम्मेलनों, परिचर्चाओं, गोष्ठियों, आलोचनाओं के माध्यम से साहित्य भी विकसित होता है। समकालीन कवि धूमिल का कवि हृदय जनसाधारण के जीवन को त्रासद बनाने वाली शक्तियों के खिलाफ मोर्चे पर तैनात है। वह सदैव अन्याय के खिलाफ बैखौफ होकर अपनी प्रतिक्रिया एवं आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं–

'रक्तपात
कहीं नहीं होगा
सिर्फ, एक पत्ती टूटेगी!
एक कंधा झुक जाएगा!
फड़कती भुजाओं और सिसकती हुई आंखों को
एक साथ लाल फीतों में लपेटकर
वे रख देंगे
काले दराजें के निश्चल एकांत में
जहां रात में
संविधान की धाराएं
नाराज आदमी की परछाई को
देश के नक्शो में
बदल देती है।[5]

समकालीन कवियों का क्रांतिकारी स्वर उनकी कविताओं में यत्र–तत्र दिखाई पड़ता है। आजादी के बाद साम्राज्यवादी शोषक शक्तियां मजबूत हुईं, वर्ग–अंतर गहराया, व्यवस्था का चरित्र जन–विरोधी हुआ, प्रजातंत्र के नाम पर तानाशाही और वंशवाद की प्रतिष्ठा हुई है। कुल मिलाकर कवि का सारा परिवेश ऐसा था, जहां संवेदनाएं घुटने के लिए विवश थीं। इन त्रासद स्थितियों ने कवि के दुख को व्यापक बनाया। निजी पीड़ा से परिशोषित कवि का व्यक्तित्व सामाजिक पीड़ा से कराह उठा। मनुष्य की त्रासदी, समाज का खोखलापन, सत्ता के छलावे और झूठे आश्वासन मनुष्यता पर गहराता आतंक और शोषण की पीड़ा कवि की पीड़ा बन जाती है।

समकालीन कवि शलभ श्रीराम सिंह के काव्य में उनके व्यक्ति का परिवेश बहुत बड़ा है। उन्होंने व्यक्ति की समस्याओं को कई रूपों में देखा है। उनके काव्य में व्यक्त व्यक्ति के मूल में न तो कोरी भावुकता है और न ही कायरता। शलभ की विचारधारा में खुलकर व्यक्त हुआ है। उनके काव्य का मानव उन रुढ़ियों के खिलाफ भी लगातार संघर्ष करते रहा है, जो चुपचाप अत्याचार को सहन करता हुआ व्यवस्था का आदी हो गया है। कवि ने उन मनुष्यों के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करते हुए उन्हें अन्याय के ख्लिाफ बंदूक उठाने का परामर्श दिया है। कवि के अनुसार अभी समय आ गया है, जब अन्याय और अत्याचारों का दमन करने के लिए बर्बर होना पड़ेगा, खून की धार रोकने के लिए खून बहाना पड़ेगा। शलभ ने मेहनतकश जनता का आह्वान करते हुए कहा है–

'बंदूक का रुख मोड़ने के लिए
बंदूक उठाओ!
सभ्यता का तकाजा है : बर्बर हो जाओ!
अब यह बेहद जरूरी है–
खून की धार रोकने के लिए खून बहाया जाए
और कोई ऐसा गीत गया जाए
जिसमें जन–गण–मन अधिनायक न हो

जिसका कोई पेशेवर गायक न हो!
अपनी सदी का गीत
मेहनतकश जनता का महाकाव्य
जिसका अकेला कोई नायक न हो!!
इतनी असुरक्षा! और चिंता! और डर![6]

सत्य को देखने वाला कवि बराबर अपने समय, समाज व परंपरा को सच्चाई से व्यंचित करता है। कवि ऐतिहासिक न होते हुए भी ऐतिहासिक होता है। इतिहास के पन्नों पर उनकी दशा परजीवी की होती है। आजादी के बाद से ही साहित्य और राजनीति के धुरंधरों ने व्यक्तिगत सुविधा और स्वार्थों की लय साधते हुए साहित्य के 'सहित भाव' से 'भाव' और राजनीति से 'नीति' को क्रमश: लुप्त कर दिया, भाव और नीति की यह जोड़ी अपसंस्कृति को ही संस्कृति समझने लगी। उसी में इसे प्रगतिशील तत्व और सामाजिक न्याय दिखाई देने लगा।

यह सब एक सुनियोजित साजिश और परंपरा के तहत किया जा रहा था, जिसकी जड़ें सुदूर अतीत में थीं। समकालीन कवि अवतार सिंह पाश की काव्यदृष्टि अत्यंत व्यापक है। वह लोक में जीता है, लोक को गाता है, लोक को भुलाता नहीं। अत: आम जनता पर हो रहे अन्याय व अत्याचारों को देखते हुए उनका बगावती खून खौल उठता है-

'अंधेरी, काली अंधेरी रातों में
जब एक पल इसी पल से सहमता है, सिहरता है
चौबारों की रोशनी तब,
खिड़कियों से कूदकर आत्महत्या कर लेती है
इन शांत रातों के गर्भ में
जब बगावत खौलती है,
रोशनी, बेरोशनी भी कत्ल हो सकता हूं मैं।'[7]

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि समकालीन कवियों ने लगभग प्रत्येक राजनीतिक घटना या स्थिति के प्रति विचारवान और विवेकपूर्ण दृष्टि रखी है। हालांकि समकालीन कवियों का ऐसा कोई विशेष वर्ग नहीं है, जिन्होंने राजनीतिक विषयों को विशेष महत्व दिया हो, परंतु फिर भी बहुत से कवि ऐसे हैं, जिन्होंने अन्य कवियों की अपेक्षा राजनीतिक जागरूकता का अहसास अधिक दिखाया है। समकालीन कवियों ने केवल राजनीतिक हलचलों पर ही चिंतन-मनन नहीं किया, बल्कि हमारे देश की लोकतांत्रिक संरचना एवं स्वरूप को लेकर भी विवेकपूर्ण कविताओं की रचना की है।❑

संदर्भ

1. रोहीताश्व-समकालीना कविता और सौंदर्यबोध, वाणी प्रकाशन, प्रथम संवस्स्करण 1996, पृष्ठ-9।
2. वही, पृष्ठ-27।
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना-'एक सुनी नाव', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ-89।
4. केदारनाथ सिंह-'प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-77।
5. धूमिल-'संसद से सड़क तक', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-84।
6. शलभ श्रीराम सिंह-'कविता की पुकार', रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, पृष्ठ-145।
7. अवतार सिंह पाश-,बीच कारास्ता नहीं होता', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-37।

- शोधार्थी, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिलचर

विमर्श

रिश्तों के बंधन में स्वच्छंदता का स्वर
'सपनों की होम डिलीवरी'

✍ श्रुति पाण्डेय

सारांश :

ममता कालिया द्वारा रचित उपन्यास 'सपनों की होम डिलिवरी' (2016) इक्कीसवीं सदी में परिवार के बदलते स्वरूप के साथ-साथ आधुनिक समय में उससे तालमेल बिठाता हुआ नजर आता है। इस उपन्यास में लेखिका वर्तमान परिदृश्य में भारतीय पारिवारिक और सामजिक ढाँचे के भीतर रहते हुए भी व्यक्ति की अस्मिता को बनाए रखने की कवायद करती हैं। उनका यह उपन्यास भारतीय समाज और परिवार की रुढ़िबद्ध मान्यताओं से लगातार टकराता हुआ बदलते समय के अनुसार उसमें संशोधन, परिमार्जन की गुंजाइश पेश करता है।

बीज शब्द :

भारतीय परिवार, अस्तित्व, सह-अस्तित्व, आधुनिक जीवन शैली, परंपरा और आधुनिकता की टकराहट

आमुख :

समाज में स्त्री-पुरुष तमाम तरीके की भूमिकाएँ अदा करते हैं और यह भूमिकाएँ स्वयं में विशिष्ट एवं चुनौतीपूर्ण होती हैं। कई तरह की भूमिकाओं में से एक है - पति-पत्नी की भूमिका। आज यह रिश्ता बंधन का पर्याय बनता जा रहा है। जहाँ व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का नितांत अभाव है। इसी रिश्ते के इर्द-गिर्द बनता है एक परिवार। संबंध व्यक्तिगत, सामजिक, पारिवारिक जितने तरीके होते हैं, उससे कहीं अधिक उनमें कई अंतर्द्वंद्व और जटिलताएँ होती हैं। इन्हीं पारिवारिक संबंधों के बीच व्यक्ति की, उसके अस्तित्व की और उसके संबंधों की पड़ताल करती हैं- ममता कालिया। आज के समय में व्यक्ति एक इकाई के रूप में स्वत: पूर्ण होने का दावा बार-बार करता है, लेकिन उसका अस्तित्व समाज और परिवेश के भीतर ही अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकता है। तमाम भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद मनुष्य समाज का ही एक अंग है और अपने परिवेश के साथ उसके सह-अस्तित्व का महत्व आज भी बना हुआ है। ममता कालिया एक रचनाकार के रूप में इस बात को अच्छी तरह समझती हैं कि कोई भी समाज अचानक किसी बदलाव की दिशा में नहीं बहने लगता। एक लम्बा समय उस परिवर्तन को धारा का रूप देने में लगता है, लेकिन इस उपन्यास में लेखिका का ध्यान पारिवारिक संबंधों के ढाँचे की ओर अधिक है, जो कि सामाजिक संरचना का आधार बिंदु भी है। समय के साथ बदलते भारतीय समाज के परिवारों में मूल्यों के साथ-साथ आपसी संबंधों के स्तर पर भी तेजी से बदलाव आया है। जहाँ एक ओर संयुक्त परिवार की भारतीय अवधारणा तेजी से टूट रही है, वहीं दूसरी ओर इस बिखराव ने संबंधों में भी दरार को जन्म दिया है।

वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के घोड़े पर सवार व्यक्ति सफलता के शिखर पर भले ही पहुँच जाए, पर उस सफलता के रास्ते में आने वाले 'सुखों को बाँटने

वाला हृदय' और 'दुखों में सहारा देने वाला कंधा' भी उसकी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। 'तमाम शोहरत, शोमैनशिप और शाबाशी के बावजूद रुचि के मन में एक सन्नाटा था, जिसे फिर से पुरुष सान्निध्य की प्रतीक्षा थी।[1]

लेखिका के विचार में व्यक्ति के इस अकेलेपन और सन्नाटे का समाधान सदियों से चली आ रही भारतीय पारिवारिक अवधारणा का बीज है, लेकिन 'प्रगति','विकास' और इन दोनों की अति-महत्वाकांक्षा ने व्यक्ति को सुखी जीवन के इस मंत्र से दूर कर दिया है और व्यक्ति अब मात्र अवसाद और कुंठा को ही सहजात भावनाएँ समझने को बाध्य है - 'पैसा उस पर बरस रहा था, आयकर की राशि हर साल बढ़ रही थी,

लेकिन कभी-कभी रुचि अवसादग्रस्त हो जाती थी। उसे लगता उसका जीवन मशीनी बनता जा रहा है।[2]

इस उपन्यास में निरंतर रुढ़िगत पारिवरिक मूल्यों से टकराहट की स्थिति बनी रहती है। प्रभाकर और रुचि के दाम्पत्य जीवन में एक-दूसरे के लिए प्रेम और सम्मान छोड़कर खीझ, हिंसा, तिरस्कार - सब कुछ है। नशे का आदी प्रभाकर क्रोध में रुचि पर हाथ आई किसी भी वस्तु से प्रहार करता, और मोहल्ले की लड़कियों से छेड़खानी के कारण पिट भी चुका है। वह उस मानसिकता वाले पुरुष समाज का आईना है, जिसके लिए स्त्री की छवि एक 'समर्पित, सहनशील, अनुगामिनी' की है। लेकिन यहाँ रुचि के माध्यम से लेखिका स्पष्ट करती हैं कि वर्तमान समय में पत्नी पति की मर्जी का खिलौना नहीं है। ऐसे दुर्व्यसनी-दुराचारी पुरुष से संबंध-विच्छेद करने और जीवन में सुखी रास्ते पर बढ़ने में कोई हर्ज नहीं है। इस बिंदु पर लेखिका भारतीय परिवार के संबंध में जड़ मानसिकता के विरुद्ध एक 'बोल्ड स्टेप' लेती दीख पड़ती हैं।

सर्वेश अपनी पत्नी मनजीत द्वारा उपेक्षित है। आधुनिक जीवन पद्धति ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर शून्यता की ओर धकेल दिया है। भौतिक आकांक्षाओं से लिप्त मनजीत के लिए पति और बेटे से अधिक महत्वपूर्ण है पैसा - 'मेरे साथ तो मनजीत कमीनी थी ही, बेटे को भी उसने नहीं छोड़ा। मोटी तनखा पाती है। सरकारी नौकरी है, पर पैसा उसे पति और बच्चे से भी ज्यादा प्यारा है।'[3]

रुचि-प्रभाकर का बेटा गगन और सर्वेश-मनजीत का बेटा अंश दोनों पर अपने माता-पिता के संबंध-विच्छेद का असर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रभाकर का गगन की बुरी आदतों को शह देना और मनजीत का अंश की परवरिश का उचित ध्यान न रखना -दोनों (गगन और अंश) को ही बुरी संगत और नशे की लत की ओर धकेल देता है। यहाँ लेखिका ने इस ओर भी ध्यान दिलाना चाहा है कि पति-पत्नी के रिश्तों की कड़वाहट भरे घर के माहौल में कभी बच्चे का सही विकास संभव नहीं हो सकता। संबंध-विच्छेद के बावजूद रुचि अपने बेटे गगन से और सर्वेश अपने बेटे अंश से भावनात्मक जुड़ाव अनुभव करते हैं और यथासंभव उनकी मदद भी करते हैं। दाम्पत्य जीवन के त्याग के बाद भी परिवार से कोई तो जुड़ाव बाकी रह जाता है। सारे सिरदर्द के बावजूद सर्वेश और रुचि अपने बच्चों से जुड़े हुए थे। तलाक पति-पत्नी का हुआ था, पिता-पुत्र या माँ-बेटे का नहीं।[4]

महिलाओं के साथ दिन भर में जाने कितनी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, जिन पर यदि गंभीरता से विचार किया जाए तो भारतीय परिवारों की चिन्दियाँ उड़ जाए।[5] 'सपनों की होम डिलिवरी' की यह पंक्तियाँ उपन्यास के समूचे उद्देश्य को समेटे हुई हैं, जो लेखिका को एक सजक रचनाकार के तौर पर इसे एक नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करती हैं। यहाँ महत्व 'चिन्दियाँ

उड़ाने' पर नहीं है, बल्कि इसकी जाँच करने पर है कि जो हो रहा है वह 'भारतीय परिवार' जैसी अवधारणा के लिए कहाँ तक सही है। और अगर कुछ गलत है तो उसके कारणों की पड़ताल करना, उनको दूर करने के रास्ते तलाशना और इसके समाधान स्वरूप एक व्यावहारिक, ग्राह्य और स्वीकार्य दृष्टिकोण तक पहुँचने का प्रयत्न करना लेखिका का उद्देश्य है। यहाँ कोशिश यह है कि परिवार रूपी इमारत की नींव को नुकसान पहुँचाए बिना उसकी ऊपरी मंजिल के कमरों को ऐसा आकार दिया जाए जो बदलते समय और मौसम के साथ भी उतना ही मजबूत और नया प्रतीत हों।

आधुनिक समय में उदारीकरण और भूमंडलीकरण के आने के बाद भारतीय समाज में कई परिवर्तन हुए और इस बदलते परिवेश में जहाँ विज्ञान, औद्योगिकीकरण ने लोगों को अनेक अवसर दिए अपने जीवन-स्तर को बढ़ाने के, वहीं इन सबके बीच रिश्ते, परिवार और आपसी समझ -ये सभी इंसान के हाथ से फिसलने लगे। पति द्वारा त्यागी गई स्त्री 'परित्यक्ता' है, पति की मृत्यु हो जाने पर 'विधवा' है, विवाह ना हुआ हो तो 'कुँआरी' है, अगर पत्नी की मृत्यु हो जाए तो पुरुष 'विधुर' है, लेकिन जिस पुरुष को उसकी पत्नी त्याग दे उसे यह समाज किस परिभाषा में बांधेगा? इस प्रकार संबंधों के इन्हीं टूटते-बनते समीकरणों के बीच ममता कालिया भारतीय समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे के सामने एक बड़ा प्रश्न खड़ा करती हैं।

पति का घर छोड़ कर मायके आई रुचि के माता-पिता के संवाद में पारिवारिक मूल्यों की बनावट में एक तरफ परंपरा जनित सोच दिखाई देती है। औरत की इज्जत अपने घर-द्वारे ही होती है, जब तेरा गुस्सा ठंडा हो जाए तो चली जाना।[6] तो वहीं दूसरी तरफ इन संवादों में आधुनिकता प्रेरित विरोध भी दिखता है। ऐसे कैसे चली जाएगी? वह अपने घर आई है। जब तक प्रभाकर आकर मेरे दरवाजे पर नाक न रगड़े, मैं रच्चू को नहीं भेजूँगा।[7]

भारतीय पारिवारिक मूल्यों में परंपरा और अधुनिकता की टकराहट यहाँ उन प्रश्नों को उभारती है, जिसके घात-प्रतिघात से आज का हर परिवार प्रभावित ही नहीं है, बल्कि परिवर्तित होने के लिए बाध्य भी है।

यह उपन्यास परिवार में हो चुके परिवर्तन के पीछे के कारणों को उसके समाज पर पड़ते प्रभाव को लक्षित करने का प्रयास करता दिखाई पड़ता है। यह पाठकों को भारतीय परिवार की परंपरा और आधुनिकता की आंतरिक सच्चाई और जटिलताओं से रूबरू करवाने के साथ-साथ परिवार की भविष्यगत संभावनाओं को भी चिह्नित करता है। 'सपनों की होम डिलिवरी' में परिवार के परिवर्तित स्वरूप का अध्ययन करते हुए भारतीय परिवार में परंपरा और आधुनिकता की टकराहट को ही नहीं, बल्कि उसके यथार्थ और आदर्श स्वरूप को भी रेखांकित किया जा सकता है।

पुरानी जड़ मान्यताओं को अस्वीकार करने वाली रुचि अपने जीवन में कहीं भी उच्छृंखल होती नहीं दीख पड़ती। वर्तमान युग में पश्चिम से आई 'सहजीवन' की अवधारणा को वह उचित नहीं मानती। वह एक 'पब्लिक-फिगर' होने के नाते स्वयं और समाज की ओर अपनी जवाबदेही को अच्छी तरह समझती है। सहजीवन एक नितांत अस्थायी, अस्थिर और असंगत अनुबंध है, जिसमें पुरुष से ज्यादा स्त्री का नुकसान है। मैं सहजीवन को गलत रिवाज मानती हूँ। हमारे ऊपर समाज की जिम्मेदारी है।[8]

परिवार की आधारशिला स्त्री-पुरुष के मध्य संबंधों की मधुरता और आपसी विश्वास पर टिकी होती है। बदलते समय का संबंधों पर भी प्रभाव पड़ता है और वे समय के साथ लचीलेपन की मांग करते हैं। यदि परिवर्तन को संबंधों में सहज विकास की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार

न किया जाए तो रिश्ते और परिवार के साथ-साथ वृहत्तर स्तर पर समाज पर इसका प्रतिकूल असर पड़ता है। इस बिंदु पर लेखिका एक नवीन दृष्टिकोण से विचार करती हुई सर्वेश और रुचि के संबंध के माध्यम से एक नए तरह के परिवार की परिभाषा गढ़ती हैं, जहाँ पति-पत्नी दोनों एक बंधन में बंधकर भी मुक्त हैं। इस रिश्ते में एक-दूसरे के 'निजी स्पेस' के लिए भी जगह है, जो साथ जुड़कर एक संयुक्त 'बड़े स्पेस' का निर्माण करती है, जिसमें पति-पत्नी अपना जीवन साझा कर सकें।

यह उपन्यास वर्तमान समय में भारतीय परिवारों और उसके माध्यम से समाज की दिशा-दशा को निर्धारित करने वाली पहलुओं को गंभीरता से उजागर करता है। पारिवारिक मूल्यों और संबंधों के समीकरण ही वह प्रस्थान-बिंदु है, जिससे गुजरता हुआ व्यक्ति वृहत्तर समाज से जुड़कर उसकी संरचना को आकार देता है।

हिंदी उपन्यासों में भारतीय परिवार की एक सुदीर्घ परंपरा दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद से लेकर वर्तमान समय में परिवार की अवधारणा निरंतर बदलती हुई दिखाई देती है। 'सपनों की होम डिलिवरी' इस संदर्भ में आखिरी न होते हुए भी नवीनतम कड़ी के रूप में सामने आता है। उपन्यास भारतीय परिवार के आदर्श को बनाए रखने के साथ-साथ उसके यथार्थ से भी रूबरू करवाता है। उपन्यास तत्कालीन समाज में परिवार के उस परिवर्तन से साक्षात्कार कराता है, जिससे आज का भारतीय समाज टकराने से कतराता है। यह रचना परिवार में स्त्री-पुरुष के संबंधों के तालमेल की वकालत उन संदर्भों में करती है, जो भारतीय रुढ़िवादिता से मुक्त होकर भी सम्पूर्ण रूप से भारतीय हैं।

निष्कर्ष :

यह उपन्यास परिवार में हो चुके परिवर्तन के पीछे के कारणों को उसके समाज पर पड़ते प्रभाव को लक्षित करने का प्रयास करता दिखाई पड़ता है। यह पाठकों को भारतीय परिवार की परंपरा और आधुनिकता की आंतरिक सच्चाई और जटिलताओं से रूबरू करवाने के साथ-साथ परिवार की भविष्यगत संभावनाओं को भी चिह्नित करता है। 'सपनों की होम डिलिवरी' में परिवार के परिवर्तित स्वरूप का अध्ययन करते हुए भारतीय परिवार में परंपरा और आधुनिकता की टकराहट को ही नहीं, बल्कि उसके यथार्थ और आदर्श स्वरूप को भी रेखांकित किया जा सकता है। यह उपन्यास भारतीय समाज में परिवार की वस्तुस्थिति को जिस धरातल पर दर्शाता है, उससे निश्चित तौर पर परिवार संबंधी महत्वपूर्ण अवधारणाओं को नई परिभाषाओं और व्याख्याओं की आवश्यकता अनुभव होती है।❑

संदर्भ सूची एवं सहायक ग्रंथ :

ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, 2016, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

1. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या-34, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
2. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या -18, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
3. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 49, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
4. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 35, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
5. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 06, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
6. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 45, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
7. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 45, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
8. ममता कालिया, सपनों की होम डिलिवरी, पृष्ठ संख्या - 54, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

- शोधार्थी, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग, तेलंगाना-500046

ईमेल- sharmaangel748@gmail.com, फोन नं.- 9810937130

✍ मंगलेश डबराल

संगतकार

मुख्य गायक के चट्टान जैसे भारी स्वर का साथ देती
वह आवाज सुंदर कमजोर काँपती हुई थी
वह मुख्य गायक का छोटा भाई है
या उसका शिष्य
या पैदल चलकर सीखने आने वाला दूर का कोई रिश्तेदार
मुख्य गायक की गरज में
वह अपनी गूँज मिलाता आया है प्राचीन काल से
गायक जब अंतरे की जटिल तानों के जंगल में
खो चुका होता है
या अपने ही सरगम को लाँघकर
चला जाता है भटकता हुआ एक अनहद में
तब संगतकार ही स्थाई को सँभाले रहता है
जैसे समेटता हो मुख्य गायक का पीछे छूटा हुआ सामान
जैसे उसे याद दिलाता हो उसका बचपन
जब वह नौसिखिया था
तारसप्तक में जब बैठने लगता है उसका गला
प्रेरणा साथ छोड़ती हुई उत्साह अस्त होता हुआ
आवाज से सारा जैसा कुछ गिरता हुआ
तभी मुख्य गायक हो ढाँढ़स बंधाता
कहीं से चला आता है संगतकार का स्वर
कभी-कभी वह यों ही दे देता है उसका साथ
यह बताने के लिए कि वह अकेला नहीं है
और यह कि फिर से गाया जा सकता है
गाया जा चुका राग
और उसकी आवाज में जो एक हिचक साफ सुनाई देती है
यों अपने स्वर को ऊँचा न उठाने की जो कोशिश है
उसे विफलता नहीं
उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए

आँसुओं की होली

✍ **प्रेमचंद**

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। इस लिहाज से हिंदी कहानी-जगत अत्यंत समृद्ध है। महान रचनाकारों प्रेमचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महादेवी वर्मा आदि ने जब अपनी कलम चलाई तो उससे निकले पात्र मानो जी उठे। द्विभाषी राष्ट्रसेवक ने अपने हर अंक में आपके लिए देशी-विदेशी लेखकों की ऐसी एक प्रतिनिधि कहानी प्रकाशित करने का निश्चय किया है ताकि समाज और समाज के बीच एक सेतु बना रहे और रोजमर्रा की व्यस्त जिंदगी में भी आप साहित्य रस का आनंद उठा पाएँ। इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है प्रेमचंद की कहानी 'आँसुओं की होली'।

-संपादक

नामों को बिगाड़ने की प्रथा न-जाने कब चली और कहाँ शुरू हुई। इस संसारव्यापी रोग का पता लगाए तो ऐतिहासिक संसार में अवश्य ही अपना नाम छोड़ जाए। पंडितजी का नाम तो श्रीविलास था; पर मित्र लोग सिलबिल कहा करते थे। नामों का असर चरित्र पर कुछ न कुछ पड़ जाता है। बेचारे सिलबिल सचमुच ही सिलबिल थे। दफ्तर जा रहे हैं; मगर पाजामे का इजारबंद नीचे लटक रहा है। सिर पर फेल्ट-कैप है; पर लंबी-सी चुटिया पीछे झाँक रही है, अचकन यों बहुत सुंदर है।

न जाने उन्हें त्योहारों से क्या चिढ़ थी। दिवाली गुजर जाती, पर वह भलामानस कौड़ी हाथ में न लेता। और होली का दिन तो उनकी भीषण परीक्षा का दिन था। तीन दिन वह घर से बाहर न निकलते। घर पर भी काले कपड़े पहने बैठे रहते थे। यार लोग टोह में रहते थे कि कहीं बचा फँस जाएँ, मगर घर में घुस कर तो फौजदारी नहीं की जाती। एक-आधा बार फँसे भी, मगर घिघिया-पुदिया कर बेदाग निकल गए। लेकिन अबकी समस्या बहुत कठिन हो गई थी। शास्त्रों के अनुसार 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद उन्होंने विवाह किया था। ब्रह्मचर्य के परिपक्व होने में जो थोड़ी-बहुत कसर रही, वह तीन वर्ष के गौने की मुद्दत ने पूरी कर दी।

यद्यपि स्त्री से कोई शंका न थी, तथापि वह औरतों को सिर चढ़ाने के हामी न थे। इस मामले में उन्हें अपना वही पुराना-धुराना ढंग पसंद था। बीवी को जब कस कर डाँट दिया, तो उसकी मजाल है कि रंग हाथ से छुए। विपत्ति यह थी कि ससुराल के लोग भी होली मनाने आने वाले थे। पुरानी मसल है : 'बहन अंदर तो भाई सिकंदर'। इन सिकंदरों के आक्रमण से बचने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था। मित्र लोग घर में न जा सकते थे; लेकिन सिकंदरों को कौन रोक सकता है?

स्त्री ने आँख फाड़ कर कहा -अरे भैया ! क्या सचमुच रंग न घर लाओगे? यह कैसी होली है, बाबा ?

सिलबिल ने त्योरियाँ चढ़ा कर कहा -बस, मैंने एक बार कह दिया और बात दोहराना मुझे पसंद नहीं। घर में रंग नहीं आएगा और न कोई छुएगा? मुझे कपड़ों पर लाल छींटे देख कर मचली आने लगती है। हमारे घर में ऐसी ही होली होती है।

स्त्री ने सिर झुका कर कहा -तो न लाना रंग-संग, मुझे रंग ले कर क्या करना है। जब तुम्हीं रंग न छुओगे, तो मैं कैसे छू सकती हूँ।

सिलबिल ने प्रसन्न हो कर कहा-निस्संदेह यही साधवी

स्त्री का धर्म है। 'लेकिन भैया तो आने वाले हैं। वह क्यों मानेंगे?'

'उनके लिए भी मैंने एक उपाय सोच लिया है। उसे सफल बनाना तुम्हारा काम है। मैं बीमार बन जाऊँगा। एक चादर ओढ़ कर लेट रहूँगा। तुम कहना इन्हें ज्वर आ गया। बस; चलो छुट्टी हुई।'

स्त्री ने आँख नचा कर कहा -ऐ नौज; कैसी बातें मुँह से निकालते हो ! ज्वर जाए मुद्दई के घर, यहाँ आये तो मुँह झुलस दूँ निगोड़े का।

'तो फिर दूसरा उपाय ही क्या है?'

'तुम ऊपरवाली छोटी कोठरी में छिप रहना, मैं कह दूँगी, उन्होंने जुलाब लिया है। बाहर निकलेंगे तो हवा लग जाएगी।' पंडित जी खिल उठे , बस, बस, यही सबसे अच्छा। 1389 होली का दिन है। बाहर हाहाकार मचा हुआ है। पुराने जमाने में अबीर और गुलाल के सिवा और कोई रंग न खेला जाता था। अब नीले, हरे, काले, सभी रंगों का मेल हो गया है और इस संगठन से बचना आदमी के लिए तो संभव नहीं। हाँ, देवता बचें। सिलबिल के दोनों साले मुहल्ले भर के मर्दों, औरतों, बच्चों और बूढ़ों का निशाना बने हुए थे। बाहर के दीवानखाने के फर्श, दीवारें , यहाँ तक की तस्वीरें भी रंग उठी थीं। घर में भी यही हाल था। मुहल्ले की ननदें भला कब मानने लगी थीं। परनाला तक रंगीन हो गया था।

बड़े साले ने पूछा-क्यों री चम्पा, क्या सचमुच उनकी तबीयत अच्छी नहीं? खाना खाने भी न आए?

चम्पा ने सिर झुका कर कहा -हाँ भैया, रात ही से पेट में कुछ दर्द होने लगा। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।

जरा देर बाद छोटे साले ने कहा-क्यों जीजी जी, क्या भाई साहब नीचे नहीं आएँगे ? ऐसी भी क्या बीमारी है! कहो तो ऊपर जा कर देख आऊँ।

चम्पा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा -नहीं-नहीं, ऊपर मत जैयो ! वह रंग-वंग न खेलेंगे। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है। दोनों भाई हाथ मल कर रह गए।

सहसा छोटे भाई को एक बात सूझी, जीजा जी के कपड़ों के साथ क्यों न होली खेलें। वे तो नहीं बीमार हैं। बड़े भाई के मन में यह बात बैठ गई। बहन बेचारी अब क्या करती? सिकंदरों ने कुंजियाँ उसके हाथ से लीं और सिलबिल के सारे कपड़े निकाल-निकाल कर रंग डाले। रूमाल तक न छोड़ा। जब चम्पा ने उन कपड़ों को आँगन में अलगनी पर सूखने को डाल दिया तो ऐसा जान पड़ा, मानो किसी रंगरेज ने ब्याह के जोड़े रंगे हों। सिलबिल ऊपर बैठे-बैठे यह तमाशा देख रहे थे; पर जबान न खोलते थे। छाती पर साँप-सा लोट रहा था। सारे कपड़े खराब हो गए, दफ्तर जाने को भी कुछ न बचा। इन दुष्टों को मेरे कपड़ों से न जाने क्या बैर था। घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बन रहे थे। मुहल्ले की एक ब्राह्मणी के साथ चम्पा भी जुटी हुई थी। दोनों भाई और कई अन्य सज्जन आँगन में भोजन करने बैठे, तो बड़े साले ने चम्पा से पूछा-कुछ उनके लिए भी खिचड़ी-विचड़ी बनाई है? पूरियाँ तो बेचारे आज खा न सकेंगे!

चम्पा ने कहा -अभी तो नहीं बनाई, अब बना लूँगी। 'वाह री तेरी अक्ल! अभी तक तुझे इतनी फिक्र नहीं कि वह बेचारे खाएँगे क्या। तू तो इतनी लापरवाह कभी न थी। जा निकाल ला जल्दी से चावल और मूँग की दाल।' लीजिए, खिचड़ी पकने लगी। इधर मित्रों ने भोजन करना शुरू किया। सिलबिल ऊपर बैठे अपनी किस्मत को रो रहे थे। उन्हें इस सारी विपत्ति का एक ही कारण मालूम होता था, विवाह! चम्पा न आती, तो ये साले क्यों आते, कपड़े क्यों खराब होते, होली के दिन मूँग की खिचड़ी क्यों खाने को मिलती? मगर अब पछताने से क्या होता है। जितनी देर में लोगों ने भोजन किया, उतनी देर में खिचड़ी तैयार हो गई। बड़े साले ने खुद चम्पा को ऊपर भेजा कि खिचड़ी की थाली ऊपर दे आए।

सिलबिल ने थाली की ओर कुपित नेत्रों से देख कर कहा -इसे मेरे सामने से हटा ले जाव।

'क्या आज उपवास ही करोगे?'

'तुम्हारी यही इच्छा है, तो यही सही।'

'मैंने क्या किया। सबेरे से जुती हुई हूँ। भैया ने खुद खिचड़ी डलवायी और मुझे यहाँ भेजा।'

'हाँ, वह तो मैं देख रहा हूँ कि मैं घर का स्वामी नहीं। सिकंदरों ने उस पर कब्जा जमा लिया है, मगर मैं यह नहीं मान सकता कि तुम चाहतीं तो और लोगों के पहले ही मेरे पास थाली न पहुँच जाती। मैं इसे पतिव्रत धर्म के विरुद्ध समझता हूँ, और क्या कहूँ !'

'तुम तो देख रहे थे कि दोनों जने मेरे सिर पर सवार थे।'

'अच्छी दिल्लगी है कि और लोग तो समोसे और खस्ते उड़ायें और मुझे मूँग की खिचड़ी दी जाए। वाह रे नसीब!'

'तुम इसे दो-चार कौर खा लो, मुझे ज्यों ही अवसर मिलेगा, दूसरी थाली लाऊँगी।'

'सारे कपड़े रंगवा डाले, दफ्तर कैसे जाऊँगा? यह दिल्लगी मुझे जरा भी नहीं भाती। मैं इसे बदमाशी कहता हूँ। तुमने संदूक की कुंजी क्यों दे दी? क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ?'

'जबरदस्ती छीन ली। तुमने सुना नहीं? करती क्या?'

'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, यह थाली ले जाव। धर्म समझना तो दूसरी थाली लाना, नहीं तो आज व्रत ही सही।' एकाएक पैरों की आहट पाकर सिलबिल ने सामने देखा, तो दोनों साले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही बिचारे ने मुँह बना लिया, चादर से शरीर ढँक लिया और कराहने लगे।

बड़े साले ने कहा -कहिए, कैसी तबीयत है? थोड़ी-सी खिचड़ी खा लीजिए।

सिलबिल ने मुँह बना कर कहा -अभी तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है।

'नहीं, उपवास करना तो हानिकर होगा। खिचड़ी खा लीजिए।'

बेचारे सिलबिल ने मन में इन दोनों शैतानों को खूब कोसा और विष की भाँति खिचड़ी कंठ के नीचे उतारी। आज होली के दिन खिचड़ी ही भाग्य में लिखी थी! जब तक सारी खिचड़ी समाप्त न हो गई, दोनों वहाँ डटे रहे, मानो जेल के अधिकारी किसी अनशन व्रतधारी कैदी को भोजन करा रहे हों। बेचारे को ठूँस-ठूँस कर खिचड़ी खानी पड़ी। पकवानों के लिए गुंजाइश ही न रही। दस बजे रात को चम्पा उत्तम पदार्थों का थाल लिए पतिदेव के पास पहुँची! महाशय मन-ही-मन झुँझला रहे थे। भाइयों के सामने मेरी परवाह कौन करता है। न जाने कहाँ से दोनों शैतान फट पड़े। दिन भर उपवास कराया और अभी तक भोजन का कहीं पता नहीं। दोबारे चम्पा को थाल लाते देख कर कुछ अग्नि शांत हुई।

बोले-अब तो बहुत सबेरा है, एक-दो घंटे बाद क्यों न आई? चम्पा ने सामने थाली रख कर कहा -तुम तो न हारी ही मानते हो, न जीती। अब आखिर ये दो मेहमान आए हुए हैं, इनकी सेवा-सत्कार न करूँ तो भी तो काम नहीं चलता। तुम्हीं को बुरा लगेगा। कौन रोज आएँगे।

'ईश्वर न करे कि रोज आएँ, यहाँ तो एक ही दिन में बधिया बैठ गई।' थाल की सुगंधमय, तर-बतर चीजें देख कर सहसा पंडितजी के मुखारविंद पर मुस्कान की लाली दौड़ गई। एक-एक चीज खाते थे और चम्पा को सराहते थे , सच कहता हूँ, चम्पा; मैंने ऐसी चीजें कभी नहीं खाई थीं। हलवाई साला क्या बनाएगा। जी चाहता है, कुछ इनाम दूँ।

'तुम मुझे बना रहे हो। क्या करूँ जैसा बनाना आता है, बना लाई।'

'नहीं जी, सच कह रहा हूँ। मेरी तो आत्मा तक तृप्त हो गई। आज मुझे ज्ञात हुआ कि भोजन का संबंध उदर से इतना नहीं, जितना आत्मा से है। बतलाओ, क्या इनाम दूँ?'

'जो मागूँ, वह दोगे ?'

'दूँगा , जनेऊ की कसम खा कर कहता हूँ !'

'न दो तो मेरी बात जाए।'

'कहता हूँ भाई, अब कैसे कहूँ। क्या लिखा-पढ़ी कर दूँ?'

'अच्छा, तो माँगती हूँ। मुझे अपने साथ होली खेलने दो।'

पंडित जी का रंग उड़ गया। आँखें फाड़ कर बोले - होली खेलने दूँ? मैं तो होली खेलता नहीं। कभी नहीं खेला। होली खेलना होता तो घर में छिप कर क्यों बैठता।

'और के साथ मत खेलो; लेकिन मेरे साथ तो खेलना ही पड़ेगा।'

'यह मेरे नियम के विरुद्ध है। जिस चीज को अपने घर में उचित समझूँ उसे किस न्याय से घर के बाहर अनुचित समझूँ, सोचो।

चम्पा ने सिर नीचा करके कहा -घर में ऐसी कितनी बातें उचित समझते हो, जो घर के बाहर करना अनुचित ही नहीं पाप भी है। पंडितजी झेंपते हुए बोले-अच्छा भाई, तुम जीती, मैं हारा। अब मैं तुम से यही दान माँगता हूँ...

'पहले मेरा पुरस्कार दे दो, पीछे मुझसे दान माँगना', यह कहते हुए चम्पा ने लोटे का रंग उठा लिया और पंडितजी को सिर से पाँव तक नहला दिया।

जब तक वह उठ कर भागें उसने मुट्ठी भर गुलाल ले कर सारे मुँह में पोत दिया। पंडितजी रोनी सूरत बना कर बोले- अभी और कसर बाकी हो, तो वह भी पूरी कर लो। मैं जानता था कि तुम मेरी आस्तीन का साँप बनोगी। अब और कुछ रंग बाकी नहीं रहा? चम्पा ने पति के मुख की ओर देखा तो उस पर मनोवेदना का गहरा रंग झलक रहा था।

पछता कर बोली- क्या तुम सचमुच बुरा मान गए

हो? मैं तो समझती थी कि तुम केवल मुझे चिढ़ा रहे हो। श्रीविलास ने काँपते हुए स्वर में कहा- नहीं चम्पा, मुझे बुरा नहीं लगा। हाँ, तुमने मुझे उस कर्तव्य की याद दिला दी, जो मैं अपनी कायरता के कारण भुला बैठा था। वह सामने जो चित्र देख रही हो, मेरे परम मित्र मनहरनाथ का है, जो अब संसार में नहीं है। तुमसे क्या कहूँ, कितना सरस, कितना भावुक, कितना साहसी आदमी था! देश की दशा देख-देख कर उसका खून जलता रहता था। 22 भी कोई उम्र होती है, पर वह उसी उम्र में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर चुका था। सेवा करने का अवसर पाकर वह इस तरह उसे पकड़ता था, मानो सम्पत्ति हो। जन्म का विरागी था। वासना तो उसे छू ही न गई थी। हमारे और साथी सैर-सपाटे करते थे; पर उसका मार्ग सबसे अलग था। सत्य के लिए प्राण देने को तैयार, कहीं अन्याय देखा और भवें तन गईं, कहीं पत्रों में अत्याचार की खबर देखी और चेहरा तमतमा उठा। ऐसा तो मैंने आदमी ही नहीं देखा। ईश्वर ने अकाल ही बुला लिया, नहीं तो वह मनुष्यों में रत्न होता। किसी मुसीबत के मारे का उद्धार करने को अपने प्राण हथेली पर लिए फिरता था। स्त्री-जाति का इतना आदर और सम्मान कोई क्या करेगा? स्त्री उसके लिए पूजा और भक्ति की वस्तु थी। पाँच वर्ष हुए, यही होली का दिन था। मैं भंग के नशे में चूर, रंग में सिर से पाँव तक नहाया हुआ, उसे गाना सुनने के लिए बुलाने गया, तो देखा कि वह कपड़े पहने कहीं जाने को तैयार है।

पूछा-कहाँ जा रहे हो?

उसने मेरा हाथ पकड़ कर कहा -तुम अच्छे वक्त पर आ गए, नहीं तो मुझे जाना पड़ता। एक अनाथ बुढ़िया मर गई है, कोई उसे कंधा देनेवाला नहीं मिलता। कोई किसी मित्र से मिलने गया हुआ है, कोई नशे में चूर पड़ा हुआ है, कोई मित्रों की दावत कर रहा है, कोई महफिल सजाए बैठा है। कोई लाश को उठानेवाला नहीं। ब्राह्मण-क्षत्री उस चमारिन की लाश कैसे छुएँगे, उनका तो धर्म भ्रष्ट होता है, कोई तैयार नहीं होता! बड़ी मुश्किल से दो कहार मिले हैं। एक मैं हूँ, चौथे आदमी की कमी थी, सो ईश्वर ने तुम्हें भेज दिया। चलो, चलें। हाय! अगर मैं जानता कि यह प्यारे मनहर का आदेश है, तो आज मेरी आत्मा को इतनी ग्लानि न होती। मेरे घर कई मित्र आए हुए थे। गाना हो रहा था। उस वक्त लाश उठा कर नदी जाना मुझे अप्रिय लगा।

बोला - इस वक्त तो भाई, मैं नहीं जा सकूँगा। घर पर मेहमान बैठे हुए हैं। मैं तुम्हें बुलाने आया था।

मनहर ने मेरी ओर तिरस्कार के नेत्रों से देख कर कहा -अच्छी बात है, तुम जाओ; मैं और कोई साथी खोज लूँगा। मगर तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी। तुमने भी वही कहा, जो तुमसे पहले औरों ने कहा था। कोई नई बात नहीं थी। अगर हम लोग अपने कर्तव्य को भूल न गए होते, तो आज यह दशा ही क्यों होती? ऐसी होली को धिक्कार है! त्योहार, तमाशा देखने, अच्छी-अच्छी चीजें खाने और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने का नाम नहीं है। यह व्रत है, तप है, अपने भाइयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही त्योहार का खास मतलब है और कपड़े लाल करने के पहले खून को लाल कर लो। सफेद खून पर यह लाली शोभा नहीं देती। यह कह कर वह चला गया। मुझे उस वक्त यह फटकारें बहुत बुरी मालूम हुईं। अगर मुझमें वह सेवा-भाव न था, तो उसे मुझे यों धिक्कारने का कोई अधिकार न था। घर चला आया; पर वे बातें बराबर मेरे कानों में गूँजती रहीं। होली का सारा मजा बिगड़ गया। एक महीने तक हम दोनों की मुलाकात न हुई। कालेज इम्तहान की तैयारी के लिए बंद हो गया था। इसलिए कालेज में भी भेंट न होती थी। मुझे कुछ खबर नहीं, वह कब और कैसे बीमार पड़ा, कब अपने घर गया। सहसा एक दिन मुझे उसका एक पत्र मिला। हाय! उस पत्र को पढ़कर आज भी छाती फटने लगती है। श्रीविलास एक क्षण तक गला रुक जाने के कारण बोल न सके।

फिर बोले - किसी दिन तुम्हें फिर दिखाऊँगा। लिखा था, मुझसे आखिरी बार मिल जा, अब शायद इस जीवन में भेंट न हो। खत मेरे हाथ से छूट कर गिर पड़ा। उसका घर मेरठ के जिले में था। दूसरी गाड़ी जाने में आधा घंटे की कसर थी। तुरंत चल पड़ा। मगर उसके दर्शन न बदे थे। मेरे पहुँचने के पहले ही वह सिधार चुका था। चम्पा, उसके बाद मैंने होली नहीं खेली, होली ही नहीं, और सभी त्योहार छोड़ दिए। ईश्वर ने शायद मुझे क्रिया की शक्ति नहीं दी। अब बहुत चाहता हूँ कि कोई मुझसे सेवा का काम ले। खुद आगे नहीं बढ़ सकता; लेकिन पीछे चलने को तैयार हूँ। पर मुझसे कोई काम लेनेवाला भी नहीं; लेकिन आज वह रंग डाल कर तुमने मुझे उस धिक्कार की याद दिला दी। ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं मन में ही नहीं, कर्म में भी मनहर बनूँ। यह कहते हुए श्रीविलास ने तश्तरी से गुलाल निकाला और उसे चित्र पर छिड़क कर प्रणाम किया। ❑

বৰপেটা সত্ৰ

✍ জ্ঞানৰঞ্জন দাস

অসমত নৱ-বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰৱৰ্ত্তক মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱৰ প্ৰধান শিষ্য মহাপুৰুষ মাধৱদেৱে বৰপেটা সত্ৰ স্থাপন কৰে ১৫৮৩ খৃঃত। সত্ৰখন বৰপেটা চহৰৰ দক্ষিণ-পূৱ কোণত অৱস্থিত। অসমৰ সত্ৰ অনুষ্ঠান সমূহ ভাৰতবৰ্ষৰ অন্যত্ৰ দেখিবলৈ নোপোৱা এক ব্যতিক্ৰমি অনুষ্ঠান। সত্ৰ সমূহত ধৰ্ম উদ্‌যাপন কৰাৰ উপৰিও ইয়াত ধৰ্ম চৰ্চা, সাহিত্য, কলা-সংস্কৃতিৰো চৰ্চা কৰা হয়। ইয়াৰ মূল অংশটো হ'ল এটা বৃহৎ প্ৰাৰ্থনা গৃহ বা কীৰ্তন ঘৰ। বৰপেটা সত্ৰৰ কীৰ্তন ঘৰটো দীঘলে ১৮০ ফুট আৰু বহলে ৯০ ফুট। কীৰ্তন ঘৰটো তিনিখন জল যুক্ত আৰু ইয়াৰ লগত সংলগ্ন তিনিখন বাৰাণ্ডা আছে। কীৰ্তন ঘৰৰ উত্তৰ, দক্ষিণ আৰু পশ্চিম ফালৰ বেৰাত ভাগৱত, ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰতৰ দৃশ্য থকা কাঠত কটা মূৰ্তি আছে। কীৰ্তন ঘৰটোৰ উত্তৰ- পূৱ দিশত আৰু পশ্চিম দিশত দুখন দুৱাৰ আছে। দক্ষিণ ফালত কোনো দুৱাৰ নাই। কীৰ্তন ঘৰৰ পূৱত উত্তৰ-দক্ষিণ দিশত পথালিকৈ এটা হেলনীয়া চালযুক্ত ঘৰ আছে আৰু ইয়াক ভাঁজ ঘৰ বোলে। কীৰ্তন ঘৰ আৰু ভাঁজ ঘৰৰ মাজত এখন দুৱাৰ আছে আৰু ভাঁজ ঘৰটোৰ পূৱ দিশত আন এখন দুৱাৰ আছে।

ঈশ্বৰ মূল সেৱাৰ স্থলী বা থাপনাখন মূল কীৰ্তন ঘৰৰ পূৱ দিশত স্থাপন কৰা হৈছে। বিশেষ ভাস্কৰ্য্যৰে নিৰ্মাণ কৰা এই থাপনাক গুৰু আসন বা

গৰুড়াসন বোলে। বৰপেটা সত্রত এনেকুৱা থাপনা তিনিখন থাপনাত শঙ্কৰদেৱে ৰচনা কৰা গুণমালা বা ভাগৱত শাস্ত্রখন স্থাপন কৰা হয়। ভকতসকলে গুৰুআসনৰ সন্মুখৰ মজিয়াত সুখসেনত বহি নাম-প্রসঙ্গ কৰে। দিনটোৰ ভিতৰত চৌধ্য প্রসঙ্গ কৰা হয়। প্রসঙ্গত শঙ্কৰদেৱ-মাধৱদেৱ ৰচিত পদ-ঘোষ-গীত আদিৰে সুৰ-তালত ভগৱানৰ গুণ নাম প্রশংসা কৰা হয়। পুৱা, গধূলি আৰু সন্ধিয়া প্রসঙ্গ কৰা হয়। এটা প্রসঙ্গৰ আকৌ কেইটামান ভাগ থাকে। তেনে ঘৰৰ একাঘৰৰ একাৰত কলিয়া গোসাই বিগ্রহ আৰু বাসুদেৱ বিগ্রহ স্থাপনা কৰি তাত পূজা সেৱা কৰাৰ ব্যৱস্থা কৰা হৈছে। আইসকলৰ নাম-প্রসঙ্গৰে বৰপেটা সত্রৰ দিনটোৰ সকলো ধর্মীয় কার্যৰ আৰম্ভ কৰা হয়।

কমেও প্রায় দহ বিঘা মাটি কালিৰ বৰপেটা সত্রৰ চৌহদটো ওখ পকী দেৱালেৰে আবৃত আৰু ইয়াৰ চাৰিদিশত চাৰিখন বাটচ'ৰা আছে। পশ্চিম ফালৰ মুখ্য বাটচৰাটো এটা ওখ পকী ঘৰ সদৃশ,

ভাগৰ মুঠ সংখ্যা হ'ল চৌধ্য। সেই চৌধ্য প্রসঙ্গৰ নাম আহিছে। ভাঁজ ঘৰত প্রসাদৰ বস্তু আৰু নির্মালি ৰখা হয়। চাকি জ্বলাবৰ বাবে লগত মিঠাতেল এই ভাঁজ ঘৰতে ৰখা হয়। সাঁচিপতীয়া পুঠি সমূহো ভাঁজ ঘৰতে সংৰক্ষণ কৰি ৰখা হয়। বৰপেটা সত্রৰ নির্মালি হিচাপে ৰঙিয়াল ফুলৰ ফুল আৰু পাত আৰু সুগন্ধি বকুলৰ ফুলৰ মালা দিয়া হয়। এই নির্মালি বিশেষ পদ্ধতিৰে তৈয়াৰ কৰা হয়, যাৰ বাবে নির্মালিবোৰ বহুত দিনলৈ ভালে থাকে। পৰৱর্ত্তী সময়ত ভাঁজ যাক দালান নামেৰে জনা যায়। পূৱ দিশৰ বাটচ'ৰাৰ সন্মুখতে আছে হৰিজন। অতীততে এই হাজিনেৰে নাঁৱেৰে যাতায়াত চলিছিল। চৌহদটোৰ ভিতৰত কেইবাটাও গুৰুত্বপূর্ণ সংৰচনা আছে। মূল কীর্তন ঘৰৰ উত্তৰ-পূৱ কোণত এটা মন্দিৰ সদৃশ পকী মঠ আছে। এই মঠটোক মাধৱদেৱৰ মঠ বোলে। এই মঠৰ ঠাইত এসময়ত মাধৱদেৱৰ বাসস্থান আছিল। মঠৰ সন্মুখত এখন পকী চোতাল আছে। ইয়াক মঠৰ চোতাল বোলে। এই মঠৰ চোতালত কিছুমান ধর্মীয়

মূল কীর্তন ঘৰৰ উত্তৰ-পূৱ কোণত এটা মন্দিৰ সদৃশ পকী মঠ আছে। এই মঠটোক মাধৱদেৱৰ মঠ বোলে। এই মঠৰ ঠাইত এসময়ত মাধৱদেৱৰ বাসস্থান আছিল। মঠৰ সন্মুখত এখন পকী চোতাল আছে। ইয়াক মঠৰ চোতাল বোলে। এই মঠৰ চোতালত কিছুমান ধর্মীয় অনুষ্ঠান আৰু ধর্মলোচনা সভাও পতা হয়। মঠ চোতালৰ পশ্চিম দিশৰ মন্দিৰ সদৃশ ঘৰ আছে। এই ঘৰটোক শ্রীৰাম আতাৰ ভিঠি বোলে।

অনুষ্ঠান কৰা হয় আৰু ধর্মলোচনা সভাও পতা হয়। মঠ চোতালৰ পশ্চিম দিশৰ আন এক সৰু মন্দিৰ সদৃশ ঘৰ আছে। এই ঘৰটোক শ্রীৰাম আতাৰ ভিঠি বোলে। এই ঘৰৰ ভিতৰত এটি কুঁৱা আছে। এই কুঁৱাৰ পানী বৰ পবিত্র বুলি ভবা হয় আৰু ইয়াক সত্রৰ বিভিন্ন কামত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। সত্র চৌহদৰ পশ্চিম উত্তৰ দিশত এটা দৌল আছে। দৌল উৎসৱৰ সময়ত সত্রৰ বিগ্রহ ইয়াতে স্থাপন কৰা হয়। দৌলৰ সন্মুখত এটি সভা ঘৰ আছে, যাক জগমোহন গৃহ কৰা হয়। মাদৱদেৱে মঞ্চ পৰা নাতি দূৰৈত উত্তৰ-পূৱ কোণত নামঘৰ সদৃশ এটি ঘৰ আছে, যাক বুঢ়া আঁতাৰ ভিঠি বোলা হয়। এই ঠাইখিনিতে অসময়ত সত্রৰ প্রথম সত্রাধিকাৰ মথুৰাদাস বুঢ়া আঁতাৰ ঘৰ আছিল। মূল কীর্ত্তন ঘৰৰ দক্ষিণ দিশত এটা সৰু নামঘৰ সদৃশ ঘৰ আছে, যাক বদুলা আঁতাৰ ভিঠি বোলা হয়। এসময়ত এই ঠাইখিনেতে উজনিৰ বদুলা আঁতাই এবছৰৰ বাবে বাস কৰিছিল। সত্র চৌহদৰ উত্তৰ আৰু দক্ষিণ সীমাত শাৰী শাৰী কেৱলীয়া ভকতৰ বাহা আছিল। চৌহদৰ উত্তৰ-পূৱ কোণত ৰাম মাধৱ বুঢ়াৰ স্মৃতিত এটা বৃহৎ অতিথিশালা আছে। সত্র পৰিচালনা কার্য্যালয়ৰ ওচৰতে মথুৰাদাস আতা পুথিভঁৰালটো আছে। চৌহদৰ দক্ষিণ-পশ্চিম কোণত সত্রৰ ৰঙ্গমঞ্চটো আছে আৰু চৌহদৰ দক্ষিণ-পূৱ কোণত সত্রীয়া সাংস্কৃতিক বিদ্যালয়খন আছে। শঙ্কৰদেৱ অধ্যায়নগাৰ চৌহদৰ উত্তৰ-পশ্চিম কোণত আৰু মাধৱদেৱ অধ্যায়নাগাৰ সত্রৰ দক্ষিণ ফালে আছে। সন্ধিয়া এই দুটা অধ্যায়নাগাৰত ভাগৱত আদি শাস্ত্র পাঠৰ অনুষ্ঠান কৰা হয়। মূল কীর্তন ঘৰৰ পশ্চিম দিশৰ সন্মুখত থকা চোতালখনক টুপৰ চোতাল বোলে। ইয়াতে পূর্বতে খোলা মঞ্চত নাট ভাওনা কৰা হৈছিল। টুপৰ চোতালৰ পশ্চিম দিশত কেলি কদমৰ গছ এজোপা আছে আৰু তাৰ তলতে ভাওনাৰ সাজ ঘৰটো অৱস্থিত।

সত্রখনৰ বিশেষ আকর্ষণীয় বস্তু হ'ল ইয়াৰ ৰভিয়াল ফুলৰ বাগিছাখন আৰু ইয়াৰ অক্ষয় বন্তিটো। মাধৱদেৱে ৰোপন কৰা ৰভিয়াল ফুল জোপাৰ আজি বয়স চাৰিশ ত্রিশ বছৰ আৰু মাধৱদেৱে জ্বলাই থোৱা অক্ষয় বন্তিটো আজিও নিৰবচ্ছিন্নভাৱে উজ্বোলিত হৈ আছে।

সত্রখনত গোটেই বছৰ বিভিন্ন ধর্মীয় অনুষ্ঠান অনুষ্ঠিত হৈ থাকে। তিথি, দৌল উৎসৱ, শ্রীকৃষ্ণৰ জন্মোৎসৱ আদি। সত্রখনৰ ধর্মীয় কামকাজ সত্রখনৰ বুঢ়া সত্রীয়া আৰু ডেকা সত্রীয়া গণতান্ত্রিক প্রক্রিয়াৰে নির্বাচন কৰা হয়। বর্তমান সত্রখনৰ বুঢ়া সত্রীয়া মাননীয় শ্রীযুত বশিষ্ঠ দেৱশর্মা আৰু ডেকা সত্রীয়া মাননীয় শ্রীযুত নৱজিৎ দাস। সত্রৰ যাৱতীয় পৰিচালনাৰ ভাৰ এখন পৰিচালনা সমিতিয়ে কৰে। এই পৰিচালনা সমিতিখন গণতান্ত্রিক প্রক্রিয়াৰে নির্বাচন কৰা হয়।

অসমৰ মৃৎশিল্পৰ অতীত আৰু বৰ্তমান

✍ ড° কৃষ্ণজ্যোতি সন্দিকৈ

মানৱ সভ্যতাৰ ইতিহাস চালে দেখা যায় যে কৃষিভিত্তিক সভ্যতাৰ বিস্তাৰে আন বহু শিল্পৰ দৰে অতি প্ৰাচীন কালতে মৃৎশিল্পৰ আৰম্ভণি আৰু বিকাশ ঘটিছিল। অতি প্ৰাচীন কালতে বিশ্বৰ বিভিন্ন অঞ্চলত মৃৎশিল্পৰ আৱিৰ্ভাব হোৱা তথ্য পোৱা যায়। অতীতৰ ঠিক কোনটো মুহূৰ্ততে প্ৰকৃতাৰ্থত মৃৎশিল্পৰ আৱিৰ্ভাব হৈছিল সেয়া সঠিককৈ ক'ব নোৱাৰি যদিও প্ৰয়োজনৰ ফালৰ পৰাই যে মানুহে অতি প্ৰাচীন কালতে মৃৎশিল্পত হাতে দিছিল তাত কোনো সন্দেহ নাই। ইতিহাসে মানৱ সভ্যতা ঢুকি নোপোৱাৰ সময়তে আদিম মানুহে অঘৰী জীৱন ত্যাগ কৰি স্থায়ী জীৱন-যাপন আৰম্ভ কৰি কৃষিৰ কাম-কাজত মনোনিৱেশ কৰাত ৰাহি হোৱা শস্য সাঁচি থোৱাৰ প্ৰয়োজনতে মানুহে মৃৎপাত্ৰ তৈয়াৰ আৰু ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ ধৰে। টি আৰ আব্ৰাহমৰ মতে, 'The clay on the shore hardening under sun might have suggested pottery. Pottery come into existence only when man settled. As long as he was a nomed. Pottery was inpracticable.' (T.R. Abraham, Handicrafts in India, Graphics Columbia, New Delhi, 1964, P. 3)। মন কৰিবলগীয়া দিশ হ'ল যে মানুহে জুই ব্যৱহাৰ কৰাৰ আগতেই মৃৎশিল্পৰ আৱিৰ্ভাৱ হৈছিল। ক্ৰমবিকাশৰ ফলত জুই ব্যৱহাৰ শিকিলত আদিম মানুহে মৃৎপাত্ৰবোৰ ৰ'দত শুকুওৱাৰ পাছত জুইত পুৰি লৈ টান আৰু দিন যোৱা কৰি লয়। জুইত পোৱা মৃৎপাত্ৰ ব্যৱহাৰৰ ফলত শস্যৰ নিৰাপদ সঞ্চয় সম্ভৱপৰ হৈ পৰাৰ উপৰি এই পাত্ৰবোৰ খাদ্য প্ৰস্তুত কৰাৰ প্ৰণালীকো পৰিৱৰ্তন কৰি পেলায়। সময়ৰ গতিত মৃৎপাত্ৰ তৈয়াৰৰ ক্ষেত্ৰত মানুহৰ অভিনৱ শিল্প নৈপুণ্য প্ৰকাশ পাব ধৰে। মানুহে মৃৎপাত্ৰ-সমূহক বিভিন্ন ৰং সানি চিত্ৰ-বিচিত্ৰ কৰি অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি ভালপোৱা হ'ল। শিল্প বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত ভাৰতবৰ্ষৰ ইতিহাস আৰু ঐতিহ্য অতি প্ৰাচীন। মানুহৰ প্ৰয়োজনীয় দিশৰ পৰা বিকাশ লাভ কৰা আন শিল্পৰ দৰে হেজাৰ হেজাৰ বছৰৰ আগতেই পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশৰ দৰে ভাৰতবৰ্ষতো বিভিন্ন অঞ্চলত মাটিৰ পাত্ৰ তৈয়াৰ কৰা কাম আৰম্ভ হৈছিল আৰু সময়ৰ গতিত ই উন্নত শিল্পলৈ ৰূপান্তৰিত হয়। মাটিৰ পাত্ৰ তৈয়াৰৰ ক্ষেত্ৰত মৃৎশিল্পীসকলে প্ৰাচীন ভাৰততে অতি নিপুণতা আৰু কাৰ্যদক্ষতাৰ পৰিচয় দিছিল। আনহাতে মহেঞ্জোদাৰো আৰু হৰপ্পাত অগণন মাটিৰ পাত্ৰ উদ্ধাৰ হোৱাটোৱে ভাৰতৰ মৃৎ শিল্প ঐতি হ্য সম্পৰ্কে গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ বহন কৰে। ইংৰাজসকলৰ দিনত ভাৰতৰ হস্তশিল্পই ইংলণ্ডৰ বস্তুৰ লগত সমানে ফেৰ মাৰিব নোৱাৰা হ'ল। ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত

স্থানীয় শিল্প সমূহে উৎপাদন কৰা সামগ্ৰী ব্যৱহাৰ কৰাৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰাত মৃৎশিল্প উন্নতিত কিছু নতুনত্বৰ প্ৰভাৱ পৰা লক্ষ্য কৰা যায়। দেশে স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ পাছত চৰকাৰে পৰম্পৰাগত শিল্প বিকাশৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰে। ভাৰতবৰ্ষৰ বিভিন্ন অঞ্চলত মৃৎশিল্পীসকলে উৎপাদন কৰা সামগ্ৰীসমূহ বিভিন্ন উদ্দেশ্যত ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এম কে পালে লেখিছে, "There is no house in India, whether in village or city, that does not use pottery vesscls for storing grains or drinking water, etc." (M.K. Pal, Crafts and Craftsmen in Traditional India, Kanok Publications, New Delhi, 1978, P, 8)।

আমাৰ অসমত অতি প্ৰাচীন কালতে মৃৎশিল্পই জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিছিল। অসমৰ অৰ্থনৈতিক ইতিহাসৰ পৰা জনা যায় যে প্ৰাচীন সময়ত শিল্পজাত সামগ্ৰী সমূহ মানুহৰ জীৱন যাত্ৰাত মূল সামগ্ৰী আছিল। প্ৰাচীন অসমৰ মানুহে মাটি হাতেৰে পিটিকি-মোহাৰি পকাই তাৰে বস্তু-বাহানি থোৱা পাত্ৰ, পুতলা, দেৱ-দেৱতাৰ মূৰ্তি সাজি সেইবোৰ জীৱনৰ ঘনিষ্ঠ অংগ কৰি লৈছিল। প্ৰাচীন অসমত মাটিৰ পাত্ৰ তৈয়াৰ কৰা নিপুণ শিল্পী যে আছিল আৰু এই পাত্ৰবোৰ ঘৰুৱা ব্যৱহাৰত, আনন্দ উৎসৱত, পূজা-পাৰ্বণ আদিত ব্যৱহাৰ বোৱা সম্পৰ্কে প্ৰাচীন সাহিত্য, প্ৰত্নতাত্ত্বিক নিদৰ্শন আদিৰ পৰা জানিব পাৰি। প্ৰাচীন অসমৰ সুযোগ্য সন্তান ভাস্কৰ বৰ্মাই (৫৯৪-৬৫০) বন্ধুত্বৰ চিনস্বৰূপে হৰ্ষবৰ্দ্ধনক (৬০৬-৬৪৮) উপহাৰ দিয়া বস্তুসমূহৰ ভিতৰত মাটিৰ বাচন-বৰ্তনো আছিল। ১৯৭০-৭১ চনৰ আমবাৰী খনন কাৰ্যত মৃৎপাত্ৰ উদ্ধাৰ হোৱাটোৱে প্ৰাচীন অসমৰ মৃৎশিল্প সম্পৰ্কে তাৎপৰ্যপূৰ্ণ দিশ বহন কৰে। আমবাৰী খনন কাৰ্যত উদ্ধাৰ হোৱা মৃৎশিল্প সমূহে প্ৰাচীন অসমৰ সভ্যতা-সংস্কৃতি যে অতি বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ আছিল তাকে প্ৰমাণ কৰে।

ঐতিহ্যৰে পূৰ্ণ মৃৎশিল্পই মধ্যযুগৰ অসমত এক সুকীয়া মৰ্যাদা লাভ কৰে। মধ্যযুগৰ অসমত স্থানীয়

মহেঞ্জোদাৰো আৰু হৰপ্পাত অগণন মাটিৰ পাত্ৰ উদ্ধাৰ হোৱাটোৱে ভাৰতৰ মৃৎ শিল্প ঐতিহ্য সম্পৰ্কে গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ বহন কৰে। ইংৰাজসকলৰ দিনত ভাৰতৰ হস্তশিল্পই ইংলণ্ডৰ বস্ত্ৰৰ লগত সমানে ফেৰ মাৰিব নোৱাৰা হ'ল। ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত স্থানীয় শিল্প সমূহে উৎপাদন কৰা সামগ্ৰী ব্যৱহাৰ কৰাৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰাত মৃৎশিল্প উন্নতিত কিছু নতুনত্বৰ প্ৰভাৱ পৰা লক্ষ্য কৰা যায়।

শাসকসকলৰ প্ৰচেষ্টাত শিল্পবিকাশৰ ক্ষেত্ৰত নতুনত্বৰ প্ৰভাৱ পৰিছিল। মধ্যযুগত কুমাৰ আৰু হীৰা সম্প্ৰদায়ে পুৰুষাণুক্ৰমে মৃৎশিল্পৰ অনুশীলন কৰিছিল। মৃৎশিল্পত বংশানুক্ৰমে কাম কৰি অহা কুমাৰসকলে সাজ গঢ়াৰ ক্ষেত্ৰত চাক ব্যৱহাৰ কৰিছিল। আনহাতে হীৰাসকলে চাক ব্যৱহাৰ নকৰাকৈ আন হাতিয়াৰ ব্যৱহাৰ কৰি মাটিৰ পাত্ৰ গঢ় দিছিল। আহোম ৰাজ্যত কুমাৰসকলৰ ৰজাভগীয়া, বিলতীয়া, সত্ৰীয়া, দেৱলীয়া আৰু ৰাজহুৱা - এ পাঁচ ভাগত বিভক্ত আছিল। কুমাৰসকলে দৈনন্দিন জীৱন-যাপনত প্ৰয়োজন হোৱা কুঁৰাৰ পাট, চিলিম, মলা, চৰু, কলহ, টেকেলি আদি অতি উচ্চ মানৰ বস্তু তৈয়াৰ কৰিছিল। কুমাৰ আৰু হীৰাসকলে অতি সুন্দৰ মাটিৰ পুতলাও সাজিছিল। মৃৎপাত্ৰসমূহ ঘৰুৱাভাৱে ব্যৱহাৰ কৰাৰ উপৰি পূজা, শ্ৰাদ্ধ আদি মাংগলিক কামত ব্যৱহাৰ কৰাটো নিয়ম হৈ পৰিছিল আৰু আজিকোপতি এই নিয়ম দেখা যায়। মাটিৰ পুতলা হাট-বজাৰত বিক্ৰীও হৈছিল। অসমৰ অনেক ঠাইত সাজ গঢ়াৰ বাবে কুমাৰ মাটি পোৱা গৈছিল। মধ্যযুগৰ অসমত বিভিন্ন অঞ্চলত কুমাৰ আৰু হীৰাসকলে বসবাস কৰিছিল আৰু তেওঁলোকৰ বাসস্থানৰ অঞ্চলসমূহ তেওঁলোকৰ নামেৰে জনাজাত হৈ পৰিছিল। মধ্য যুগত অসমৰ আৰ্থ-সামাজিক ব্যৱস্থাক কুমাৰসকলৰ গুৰুত্ব বহু বৃদ্ধি পাইছিল। প্ৰসংগক্ৰমে উল্লেখ কৰিব পাৰি যে বৰপেটা সত্ৰৰ অধিকাৰ মথুৰাদাস বুঢ়া আতাক কোচ ৰজা বীৰ নাৰায়ণে যি ওঠৰ ঘৰ পাইক দিছিল, সিবোৰৰ ভিতৰত কুমাৰৰ পৰিয়ালো আছিল। নৱ-বৈষ্ণৱবাদৰ প্ৰচাৰক মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে কপিলীমুখৰ পৰা কুমাৰ অনাই মাটিৰ খোল সজাইছিল। দৰং বংশাৱলীৰ মতে, কুমাৰে ইটা সাজি ঘিউত ভাজি সেই ইটাৰে ৰাজকাৰ্য সম্পাদনা কৰিছিল। স্বৰ্গদেও চুখমফাই (১৫৫২-১৬০৩) কোচ ৰাজ্যত দুৰ্গোৎসৱ পতাৰ দৰে নিজ ৰাজ্যত দুৰ্গোৎসৱ পাতিবলৈ সিদ্ধান্ত লৈছিল। এইজনা স্বৰ্গদেৱে নিজ ৰাজ্যত দুৰ্গোৎসৱ পাতিবৰ বাবে কোচবিহাৰৰ পৰা কুমাৰ অনাই দুৰ্গা প্ৰতিমা গঢ় দিছিল। আহোম শাসনৰ

শেষৰ সময়ত যি মোৱামৰীয়া বিদ্রোহ আৰু মানৰ আক্রমণ অসমত দেখা দিছিল তাৰ ফল হিচাপে ঐতিহ্যবাহী মৃৎশিল্পই বহু পৰিমাণে সংকটৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল।

মানৰ আক্রমণৰ ফলত ইংৰাজসকলে অসম দখল কৰাৰ বাট মুকলি হ'ল। অসমৰ বাবে অতি দুখ আৰু দুর্ভাগ্যৰ কথা যে ১৮২৬ চনৰ ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ পাছত ঔপনিৱেশিক উৎপাদন ব্যৱস্থাই অসমৰ পৰম্পৰাগত থলুৱা শিল্প ব্যৱস্থাক গ্রাস কৰি পেলালে। ইংৰাজসকলৰ চক্রান্তমূলক ঔদ্যোগিক নীতিৰ কু-ফল মৃৎশিল্পৰ ওপৰতো পৰিল। ইংৰাজসকলে অসম দখল কৰি উপলব্ধি কৰিলে যে ৰাজ্যখনত পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা ঐতিহ্যবাহী থলুৱা শিল্পসমূহ ধ্বংস কৰিব নোৱাৰিলে তেওঁলোকৰ ঔপনিৱেশিক স্বার্থ পূৰণ নহ'ব। গতিকে ইংলেণ্ডত নির্মিত শিল্পজাত সামগ্রীৰ চাহিদা বৃদ্ধিৰ বাবে থলুৱা শিল্পসমূহ ধ্বংস কৰা কার্যত ইংৰাজসকল লাগি গ'ল। আন আন শিল্পসমূহৰ লগতে মৃৎশিল্পয়ো ঔপনিৱেশিক কালত গভীৰ প্রত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হ'ল। ঔপনিৱেশিক আমোলত মৃৎশিল্প অঞ্চল বিশেষত লুপ্ত হৈ পৰিল যদিও কিছুমান অঞ্চলত অতি কষ্টেৰে পুৰুষানুক্রমে একাংশ শিল্পীয়ে এই শিল্পত আত্মনিয়োগ কৰি জীৱিকা আৰু ব্যৱসায়ৰ পথস্বৰূপে সাবটি ধৰি থাকিল। অসমৰ নতুন পুঁজিবাদী অর্থনীতিৰ প্রতিযোগিতাৰ লগত ফেৰ মাৰিব নোৱাৰি বহু মৃৎশিল্পীয়ে তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত বৃত্তি পৰিত্যাগ কৰি আন ব্যৱসায় আৰু জীৱিকাত মনোনিৱেশ কৰেগৈ। পুৰুষানুক্রমে মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত হৈ অহা শিল্পীসকলৰ বাবে শিল্পচর্চাৰ ক্ষেত্রত কোনো অনুষ্ঠান-প্রতিষ্ঠান নোহোৱাত পিতাকতকৈ পুতেকে বেছি উন্নতি কৰি নতুন ধৰণৰ বস্তু সৃষ্টি কৰিব পৰা নাছিল। এটা খেল বা শ্রেণী হিচাপে প্রচলিত সমাজ-ব্যৱস্থাত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা লোৱা কুমাৰসকলৰ অর্থনৈতিক জীৱন অতি শোচনীয় আছিল। ইংৰাজসলৰ দিনত মৃৎশিল্পীসকলৰ অৱস্থা সম্পর্কে ৰাজেন শইকীয়াই লিখিছে, "A sheer force of habit and a value system of their own made the potters go further and fare worse. They carried on their traditional craft unmindful of the econimic shift around them. There was no evidence of their endeavour to improve the quality of their product." (Rajen Saikia, Social and Economic History of Assam, Manohar, New Delhi, 2001, P, 66)। অসম চৰকাৰে থলুৱা শিল্পবোৰৰ গুৰুত্ব অনুভৱ কৰি ১৯১৮ চনৰ এই শিল্পবোৰৰ উন্নয়নৰ বাবে এটা পৃথক শিল্প

পৰম্পৰাগতভাৱে মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত হৈ অহা লোকসকলৰ পুত্র-পুত্রীসকলৰ বেছিভাগেই অন্য ব্যৱসায়ৰ প্রতি আগ্রহ কৰা দেখা গৈছে। অর্থনৈতিকভাৱে পিছপৰা মৃৎশিল্পীসকলে বছৰটোৰ পাঁচ-ছমাহ মানহে মৃৎপাত্র তৈয়াৰ কৰাৰ লগত জড়িত হৈ থাকে আৰু এই ব্যস্ত থকা সময়খিনিত যি অর্থ উপার্জন কৰে তাৰ ওপৰতে গোটেই বছৰটো নির্ভৰ কৰিবলগীয়া হয়। গতিকে অসমৰ মৃৎশিল্পক 'ছিজন ফ্লৱাৰহে বুলি উল্লেখ কৰিব পাৰি।

বিভাগ গঠন কৰিছিল যদিও এই শিল্প বিভাগ গঠনৰ পিছতো অসমৰ মৃৎশিল্প উন্নয়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ প্ৰভাৱ নপৰিল। ঔপনিৱেশিক আমোলত মূলধনৰ অভাৱ, বজাৰৰ অভাৱ, অসমৰ বাহিৰৰ পৰা অহা শিল্পজাত বস্তুৰ লগত প্ৰতিযোগিতা, চৰকাৰী পৃষ্ঠপোষকতাৰ অভাৱ আদিৰ ফলত মৃৎশিল্পৰ অৱস্থা অতি সংকটাপন্ন হৈ পৰিছিল।

১৯৪৭ চনৰ পাছত অসমৰ গ্ৰাম্য অৰ্থনীতি অধিক সৱল কৰি তুলিবলৈ মৃৎশিল্পৰ উন্নতিৰ ওপৰত চৰকাৰে কিছু গুৰুত্ব দি আহিছে যদিও মৃৎশিল্প উন্নয়নৰ প্ৰতিচ্ছবিখন আশা-সঞ্চাৰী নহয়। চৰকাৰৰ সহযোগিতা অবিহনেও অসমৰ অনেক অঞ্চলত বহু লোকে মৃৎশিল্পৰ উন্নয়নৰ লগত জড়িত হৈ আহিছে আৰু মৃৎশিল্পৰ পৰা আয় আৰু নিয়োগৰ সুবিধা লাভ কৰি আহিছে। ৰাজ্যখনত সংগঠিত প্ৰচেষ্টা হিচাপে ১৯৫৩ চনত গঠন হোৱা অসম খাদী আৰু গ্ৰামোদ্যোগ ব'ৰ্ডে বিভিন্ন আঁচনি সম্প্ৰসাৰণৰ মাধ্যমেৰে মৃৎশিল্পৰ উন্নতিৰ ক্ষেত্ৰত কিছু নতুনত্ব আনিবলৈ সক্ষম হৈছে। এইব'ৰ্ডে প্ৰশিক্ষণ আৰু সামগ্ৰী উৎপাদনৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি মৰিগাঁও জিলাৰ ধৰমতুলত ১৯৬৪ চনত এটি মৃৎশিল্প সম্প্ৰসাৰণ আৰু প্ৰশিক্ষণ তথা উৎপাদন কেন্দ্ৰ স্থাপন কৰি বহু যুৱক-যুৱতীক মৃৎশিল্পৰ প্ৰতি আগ্ৰহী কৰি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। ধৰমতুলৰ এই কেন্দ্ৰত উন্নতমানৰ ফুলৰ টাব, পানীৰ নলী, মৃৎ পাইখানা, পুতলা, ফিল্টাৰ আদি বিভিন্ন বস্তু তৈয়াৰ কৰাৰ উপৰি এই কেন্দ্ৰৰ দুটা প্ৰদৰ্শক দলে গাওঁ অঞ্চললৈ গৈ বিভিন্ন ঠাইত প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী চলায়। পূৰ্বৰ হীৰা সম্প্ৰদায়ৰ মাজত প্ৰচলিত হৈ থকা লাঠীৰে মাটি মৰা ব্যৱস্থাৰ ঠাইত বৰ্তমান এই উদ্যোগত উন্নতমানৰ চাক, বিজুলী চালিত শ্যেলা হুইলৰ প্ৰভাৱত অধিক বিকশিত হৈ পৰিছে। আনহাতে অসমৰ বিভিন্ন জিলাত যেনে - নগাঁও, গোৱালপাৰা, যোৰহাট, শিৱসাগৰ, ডিব্ৰুগড়, গোলাঘাট, নলবাৰী আৰু কাছাৰ আদিত পৰম্পৰাগত বিভিন্ন মাটিৰ বাচন, আচ-বাব তৈয়াৰ কৰি বহুলোকে ব্যৱসায়িক ভিত্তিত মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত। অসমত পৰম্পৰাগত বিভিন্ন মাটিৰ পাত্ৰ তৈয়াৰ কৰাৰ উপৰি একাংশ মৃৎশিল্পীয়ে বিশ্বকৰ্মা পূজা, লক্ষ্মী পূজা, দুৰ্গা পূজা, কালী পূজা আদি বিভিন্ন পূজাৰ প্ৰতিমা সজাৰ লগত জড়িত। অসমৰ বিভিন্ন অঞ্চলত প্ৰায় পাঁচ-ছয় লাখ লোক মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত হৈ আছে। ডি এন চাৰাফে সঠিক ভাৱে কৈছে, "West Assam has been proficient in the craft of terracotta. In Kamrup among other objects, terracotta tiles are made. Asharkandi, a village in Goalpara districtis famous for its graceful clay dolls. Household articles are made by potters all over the state.' (D.N. Saraf, Craft Development, 1941-1991, Sampark (Publication Division), New Delhi, 1991, P, 71.)।

খাদী আৰু গ্ৰাম্য উদ্যোগ বৰ্ড, অসমৰ তথ্য অনুসৰি ১৯৯২-৯৩ চনত এই শিল্প উদ্যোগত ২৫,৩৬৯ জন লোকে নিযুক্তিৰ সুবিধা লাভ কৰাৰ বিপৰীতে ২০০২-০৩ চনত ২৫,৭৩৭ জন লোকে কৰ্ম সংস্থাপন লাভ কৰিছিল (K.J. Handique, Pottery Industry in Assam, UGC Sponsored Gandhian Studies Centre, Gargaon College, Simaluguri, 2012, P, 10)। অসম চৰকাৰে প্ৰকাশ কৰা পাৰিসাংখ্যিক হাতৰ পুথিৰ তথ্য অনুসৰি ১৯৯৮-৯৯ চনত মৃৎশিল্প উদ্যোগে উৎপাদন কৰা দ্ৰব্যৰ মূল্য ১৮৯.২৩ লাখ আছিল। আনহাতে ২০০৯-১০ চনত এই শিল্পত ২৮৫৩০ জন লোকে নিযুক্তি পাবলৈ সক্ষম হৈছিল আৰু উৎপাদিত দ্ৰব্যৰ

মূল্য ১৬৩.২৩ লাখ আছিল (Statistical Hand Book Assam, Directorate of Economics and Statistics, Govt. of Assam, Guwahati, 2011, PP, 159-160)। অসমৰ মৃৎশিল্পৰ এটি মন কৰিবলগীয়া বিশেষত্ব হ'ল যে মৃৎশিল্পীসকলে গঢ় দিয়া মৃৎপাত্রসমূহ এবাৰ ব্যৱহাৰৰ পিছত চুৰা বস্তু বুলি ভাবি পেলাই দিয়া নিয়ম আছে। গুৰচৰণ সিঙৰ মতে, "Even in the culture of Mohenjo Daro, we find large mounds and heaps of broken pots, used for drinking water and then thrown away. Today again the posts used for drinking tea or milk at railway stations are thrown away after one use." (Gurcharan Singh, Pottery in India, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1979, P.29)। এই মৃৎশিল্পৰ বাবে প্রয়োজনীয় মাটিকে ধৰি প্রায়বিলাক উপকৰণেই পোৱা যায় আৰু সিবিলাক উপকৰণৰ দ্বাৰা প্রচলিত পদ্ধতিৰে বিভিন্ন ধৰণৰ মৃৎপাত্র গঢ় দিব পাৰি। মৃৎপাত্র উৎপাদন কার্যত নিয়োজিত হ'বৰ বাবে এজন লোকক অধিক মূলধনৰো প্রয়োজন নহয়। গতিকে এই শিল্প বিকাশৰ সম্ভাৱনীয়তা অতি উজ্জ্বল বুলি ক'ব পাৰি।

মন কৰিবলগীয়া যে অসমৰ থলুৱা মৃৎশিল্পীসকলৰ তুলনাত ৰাজ্যখনৰ বাহিৰৰ পৰা অহা শিল্পীসকলে বেছি নিপুণতাৰে মৃৎপাত্র গঢ়ি বজাৰ দখল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। Sibsagar District Gazetteer তথ্য অনুসৰি, "The decline of the indigenous industry has opened scope for potters from Bihar and displaced pottersfrom East Pakistan who are now found working in isolated units." (Assam State Gazetteer, Sibsagar District, Govt. of Assam, Shillong, 1967, P. 182)। পৰম্পৰাগতভাৱে মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত হৈ অহা লোকসকলৰ পুত্র-পুত্রীসকলৰ বেছিভাগেই অন্য ব্যৱসায়ৰ প্রতি আগ্রহ কৰা দেখা গৈছে। অর্থনৈতিকভাৱে পিছপৰা মৃৎশিল্পীসকলে বছৰটোৰ পাঁচ-ছমাহ মানহে মৃৎপাত্র তৈয়াৰ কৰাৰ লগত জড়িত হৈ থাকে আৰু এই ব্যস্ত থকা সময়খিনিত যি অর্থ উপার্জন কৰে তাৰ ওপৰতে গোটেই বছৰটো নির্ভৰ কৰিবলগীয়া হয়। গতিকে অসমৰ মৃৎশিল্পক 'ছিজন ষ্লাৱাৰহে বুলি উল্লেখ কৰিব পাৰি। আজিও মৃৎশিল্পীসকলে উৎপাদিত দ্রব্য বিক্রীৰ বাবে বিভিন্ন স্থানলৈ নিবৰ কাৰণে ঠেলা, নাও আদিকে মুখ্য বাহন হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে। উৎপাদন কার্যত পৰম্পৰাগত কৌশল প্রয়োগ কৰা মৃৎশিল্পীসকলৰ অর্থনৈতিক অৱস্থা অতি শোচনীয়। এই শিল্পীসকল প্রায়বিলাক আধুনিক সা-সুবিধাৰ পৰা বঞ্চিত হৈ আছে। অর্থনৈতিকবাৰে দুর্বল লোকসকলৰ বাবে চৰকাৰে গ্রহণ কৰা প্রায়বিলাক আঁচনি এওঁলোকৰ ওচৰ পোৱাগৈ নাই। উৎপাদিত সামগ্রী বেছিভাগ এতিয়াও মধ্যভোগীক বিক্রী কৰা দেখা যায়। সদৌ অসম কুমাৰ সন্মিলন, সদৌ অসম হীৰা সন্মিলন আদি সংগঠন সমূহে তেওঁলোকৰ শিল্প বিকাশৰ বাবে বিভিন্ন দাবী উত্থাপন কৰি আহিছে যদিও চৰকাৰে এই দাবীসমূহ সহানুভূতিৰে বিবেচনা কৰি সমাধান কৰা বাবে বিশেষ ব্যৱস্থা গ্রহণ কৰা দেখা নাযায়।

বর্তমান সময়ত ৰাজ্যখনত সাজ গঢ়নৰ উন্নত পদ্ধতিৰ অভাৱ, এলুমিনিয়াম শিল্পৰ প্রভাৱ, বজাৰ ব্যৱস্থাৰ অসুবিধা, মূলধনৰ নাটনি, উৎপাদিত সামগ্রী ক্রয়-বিক্রয়ৰ ক্ষেত্রত দালাৰ শ্রেণীৰ প্রাদুর্ভাৱ, শিল্পীসকলৰ আর্থিক দুৰৱস্থা আদি বিভিন্ন কাৰণত অসমৰ মৃৎশিল্প উদ্যোগৰ অস্তিত্বৰ প্রতি ভাবুকি আহি পৰিছে। অতীততে কৰাৰ দৰে আজি অসমত মাটিত পোটা খুটি এটাৰ ওপৰত পৰা চাকখনতেই পাত্রই গঢ় লয়। বংশানুক্রমে কুমাৰ আৰু হীৰা সম্প্রদায় দুটিয়ে বিভিন্ন সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈয়ো অধিক শ্রম আৰু সময় খৰচ কৰি একাগ্রতাৰে মৃৎশিল্পৰ লগত

জড়িত হৈ থকাটো এটা প্রেৰণাদায়ক দিশ বুলি ক'ব পাৰি। অসমীয়া জাতিৰ শতাব্দীৰ পিছত শতাব্দী ক্রমবিকাশত মৃৎশিল্পৰ লগত জড়িত কুমাৰ আৰু হীৰা সম্প্রদায়কৰ লোকসকলৰ অৱদান নিঃসন্দেহে অতি স্মৰণীয়। অসমত সঘনে হৈ থকা বন্ধ, আন্দোলন আদিৰ বাবে এই শিল্পৰ লগতে জড়িত লোকসকল অতি বেছিকৈ ক্ষতিগ্রস্ত হোৱা দেখা যায়।

মৃৎশিল্পীসকলে উৎপাদনত ব্যৱহাৰ কৰা উপাদানসমূহৰ দাম দিনক নিদে দ্রুতগতিত বৃদ্ধি পাইছি। উৎসৱ-পার্বণৰ সময়ত এওঁলোকে উৎপাদন কৰা দ্রব্যসমূহৰ চাহিদা বৃদ্ধি পায় যদিও আন সময়ত এওঁলোকৰ আয়ৰ পৰিমাণ অতি কম। শ্রমভিত্তিক এই শিল্পত উৎপাদন কৰা দ্রব্যই বিশেষ প্রৰিৱেশগত সমস্যা সৃষ্টি নকৰে গতিকে সম্প্রতি এই শিল্পৰ বিকাশ হোৱাটো অদি প্রয়োজন হৈ পৰিছে। মাটি, পানী, বায়ু, অগ্নি আদিৰ লগত নিবিড় সম্পর্ক থকা মৃৎশিল্প এক নিভাঁজ শিল্প। অসমীয়া জাতিৰ আর্থ-সামাজিক উৎকর্ষ সাধনৰ বাবে ঐতিহ্যমণ্ডিত মৃৎশিল্পক বিলুপ্তিৰ পথলৈ যাব নিদি এই শিল্পৰ উন্নতিৰ বাবে নতুন কৌশল আৰু চিন্তা অতি প্রয়োজন হৈ পৰিছে। অসম চৰকাৰে মৃৎশিল্পৰ

উন্নতিৰ বাবে যি ব্যৱস্থা লৈছে এই ব্যৱস্থাৰ দ্বাৰা ৰাজ্যখনত অনেক স্থানত থকা মৃৎশিল্পীসকলক সাঙৰি লোৱা লক্ষ্য কৰা নাযায়। গতিকে অসমৰ বিভিন্ন স্থানত সিঁচৰিত হৈ থকা অধিক পৰিশ্রমী আৰু প্রতিভাৱান মৃৎশিল্পীসকলক সংগঠিত কৰি আর্থিক আৰু প্রশিক্ষণ বিষয়ত সর্বতোপ্রকাৰে সাহায্য দিবৰ বাবে হ্রস্বকালীন আৰু দীর্ঘকালীন আঁচনি লোৱাটো অতি ফলদায়ক হ'ব।

১৯৯১ চনৰ পিছৰ পৰা শিল্প বিকাশৰ ক্ষেত্রত চৰকাৰী কৌশলৰ বহু পৰিবর্তন ঘটিছে। আর্থিক সংস্কাৰৰ সময়ছোৱাত চৰকাৰে ঔদ্যোগিক উন্নয়নৰ ক্ষেত্রত পৰম্পৰাগত শিল্পৰ বিকাশৰ ওপৰতো কিছু গুৰুত্ব প্রদান কৰিছে। চৰকাৰে গূঢ়ভাৱে উপলব্ধি কৰা উচিত যে এটা জাতিৰ আৰেগ আৰু ভাবৰ প্রতীক মৃৎশিল্পৰ বিকাশৰ অবিহনে আর্থসামাজিক বিকাশ কেতিয়াও আশা কৰিব নোৱাৰি। চৰকাৰে অর্থনৈতিক গোলকীকৰণ নীতি গ্রহণ কৰাৰ সময়ত অধিক বাস্তববাদী হ্রস্বকালীন আৰু দীর্ঘকালীন আঁচনি গ্রহণ কৰি শ্রম নিবিড় মৃৎশিল্পই সন্মুখীন হোৱা সমস্যাসমূহ দুৰ কৰিব পাৰিলেহে নতুন প্রজন্মই মৃৎশিল্পৰ প্রতি আকর্ষিত হ'ব। মৃৎশিল্পীসকলেও অনুধাৱন কৰা উচিত যে চৰকাৰী সাহায্যৰ ওপৰত তেওঁলোক অনন্ত সময়ৰ বাবে নির্ভৰশীল হৈ থাকিলে নহ'ব। তেওঁলোকে চৰকাৰী সাহায্য লাভ কৰি অধিক সুসংহত কৌশল প্রয়োগ কৰি নির্দ্দিষ্ট সময়ৰ ভিতৰত নিজকে আত্মনির্ভৰশীল কৰি তুলিব লাগিব। যি শিল্প ঐতিহ্য, পৰম্পৰা আৰু সাংস্কৃতিৰ লগত নিবিড়ভাৱে জড়িত তেনে ধৰণৰ শিল্পই সৱল বিকাশ লাভ কৰিলেহে অসমৰ কৃষিভিত্তিক অর্থনীতিৰ গতি সঞ্চাৰিত হ'ব বুলি আশা কৰিব পাৰি। অসমৰ আর্থসামাজিক ধাৰাৰ লগত ওতঃপ্রোতভাৱে জড়িত হৈ থকা মৃৎশিল্পৰ দ্রুত বিকাশ হোৱাটো ৰাজ্যখনৰ বাবে বর্তমান সময়ত অতি জৰুৰী হৈ পৰিছে।

मातृभाषा प्रेम

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।
उन्नति पूरी है तबहिं जब घर उन्नति होय
निज शरीर उन्नति किये, रहत मूढ़ सब कोय।
निज भाषा उन्नति बिना, कबहुं न ह्वैहैं सोय
लाख उपाय अनेक यों भले करे किन कोय।
इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग।
और एक अति लाभ यह, या में प्रगट लखात
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात।
तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय
यह गुन भाषा और महं, कबहूं नाहीं होय।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।
भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात।
सब मिल तासों छांड़ि कै, दूजे और उपाय
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय।

-भारतेंदु हरिश्चंद्र

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2019-21 ❖ Date of publication : 30th October, 2021 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

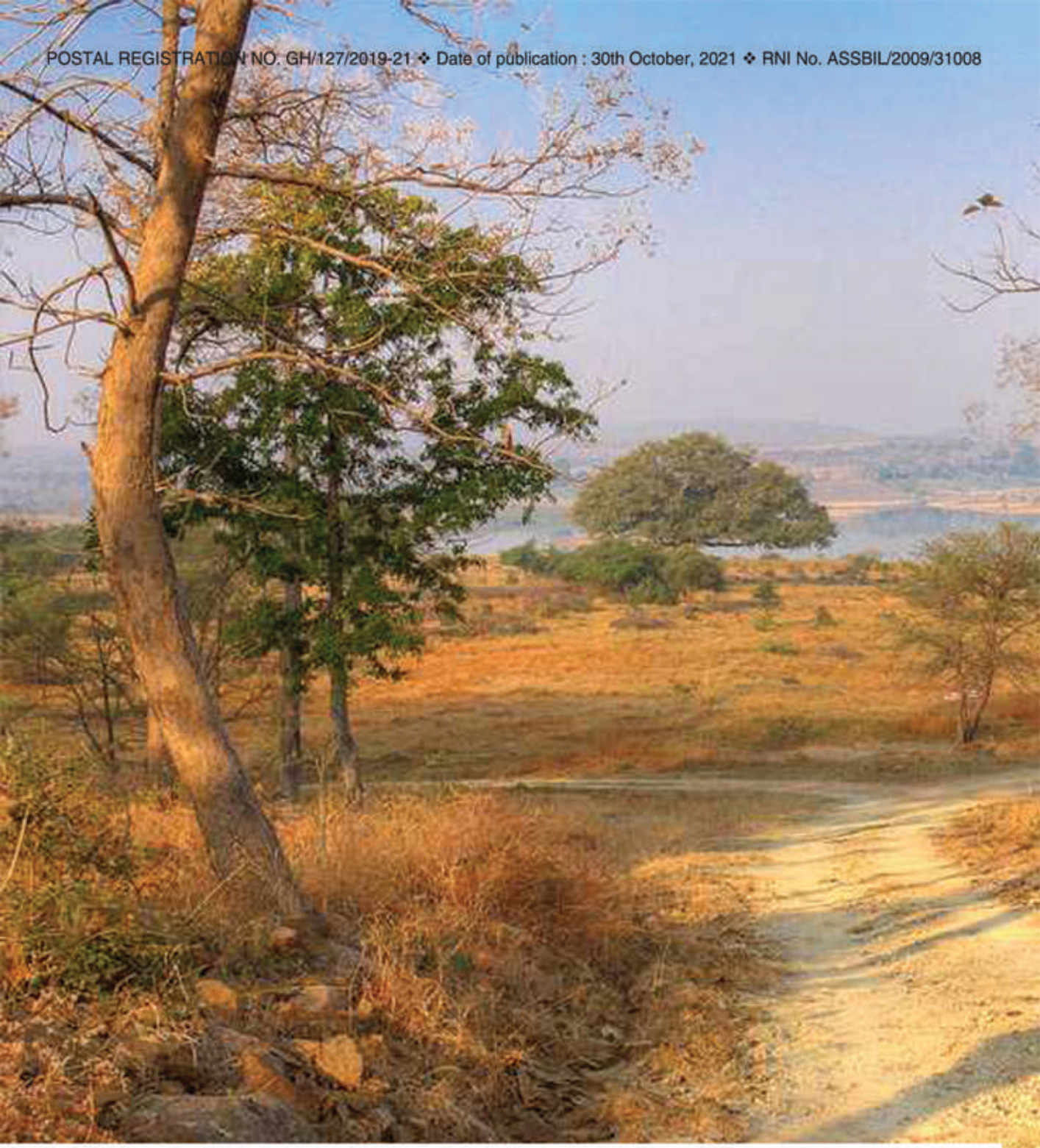

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा ग्राफिक्स प्रेस, हेदायतपुर, गुवाहाटी-3 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित। दूरभाष : (0361) 2463394, 2462811, फैक्स : 0361-2463394
संपादक : डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया e-mail : arps.guwahati@gmail.com कार्यकारी संपादक : रामनाथ प्रसाद